अध्याय ३

श्री चैतन्य महाप्रभु का अद्वैत आचार्य के घर रुकना

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपनी पुस्तक *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में तृतीय अध्याय का निम्नलिखित सारांश दिया है। कटवा में संन्यास ग्रहण कर लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु लगातार तीन दिनों तक राढ़देश में यात्रा करते रहे और नित्यानन्द प्रभु की युक्ति से अन्ततः वे शान्तिपुर की पश्चिमी दिशा में आये। उन्हें गंगा नदी को ही यमुना नदी होने का विश्वास दिलाया गया। जब वे इस पवित्र नदी की पूजा कर रहे थे, तब अद्वैत प्रभु नाव में वहाँ आये। अद्वैत प्रभु ने उनसे प्रार्थना की कि वे गंगा में स्नान करें और फिर उन्हें वे अपने घर ले गये। वहाँ नवद्वीप के सारे भक्त शचीमाता के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने आये। यह घर शान्तिपुर में था। माता शचीदेवी श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के लिए भोजन बनाती थी। उस समय अद्वैत प्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के बीच कई बार हास-परिहास चला। फिर संध्या-समय अद्वैत प्रभु के घर में विशाल सामूहिक कीर्तन हुआ और माता शचीदेवी ने चैतन्य महाप्रभु को विदा होने की अनुमति प्रदान की। उन्होंने अनुरोध किया कि वे अपना मुख्य आवास जगन्नाथ पुरी, नीलाचल को बनायें। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता की बात मान ली और नित्यानन्द प्रभु, मुकुन्द, जगदानन्द तथा दामोदर के साथ शान्तिपुर से विदा हो गये। शचीमाता से विदा लेकर वे सभी छत्रभोग के रास्ते से जगन्नाथ पुरी की ओर चल पड़े।

ন্যাসং বিধায়োৎপ্রণয়োঽথ গৌরো
বৃন্দাবনং গন্তু-মনা ভ্রমাদ্ যঃ ।
রাঢ়ে ভ্রমন্শান্তি-পুরীময়িত্বা
ললাস ভক্তৈরিহ তং নতোঽস্মি ॥১॥

न्यासं विधायोत्प्रणयोऽथ गौरो
वृन्दावनं गन्तु-मना भ्रमाद् य्रः ।
राढ़े भ्रमन्शान्ति-पुरीमयित्वा
ललास भक्तैरिह तं नतोऽस्मि ॥ १ ॥

न्यासम्—संन्यास आश्रम के विधि-विधान; **विधाय**—स्वीकार करने के बाद; **उत्प्रणयः**—गहन कृष्ण-प्रेम का जागरण; **अथ**—इस प्रकार; **गौरः**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **वृन्दावनम्**—वृन्दावन को; **गन्तु-मनाः**—जाने का विचार करके; **भ्रमात्**—भ्रम से; **य्रः**—जो; **राढ़े**—राढ़ नामक स्थान पर; **भ्रमन्**—भ्रमण करते हुए; **शान्ति-पुरीम्**—शान्तिपुर की ओर ; **अयित्वा**—जाकर; **ललास**—आनन्द उठाया; **भक्तैः**—भक्तों के संग; **इह**—यहाँ; **तम्**—उनको; **नतः अस्मि**—मैं सादर प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

संन्यास ग्रहण करने के बाद चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के प्रति उत्कट प्रेमवश वृन्दावन जाना चाहते थे, किन्तु लौकिक रूप से भ्रमवश वे राढ़देश में घूमते रहे। बाद में वे शान्तिपुर पहुँचे और वहाँ भक्तों के साथ आनन्दपूर्वक रहे। मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ।

জয় জয় শ্রী-চৈতন্য জয় নিত্যানন্দ ।
জয়াদ্বৈতচন্দ্র জয় গৌর-ভক্ত-বৃন্দ ॥২॥

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ २ ॥

जय जय—जय जय; **श्री-चैतन्य**—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **जय**—जय हो; **नित्यानन्द**—नित्यानन्द प्रभु की; **जय**—जय हो; **अद्वैत-चन्द्र**—श्री अद्वैत गोसांइ की; **जय**—जय हो; **गौर-भक्त-वृन्द**—श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री

अद्वैत प्रभु की जय हो! श्रीवास आदि श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

চব্বিশ বৎসর-শেষ যেই মাঘ-মাস ।
তার শুক্ল-পক্ষে প্রভু করিলা সন্ন্যাস ॥৩॥

चब्बिश वत्सर-शेष ग्रेइ माघ-मास ।
तार शुक्ल-पक्षे प्रभु करिला सन्न्यास ॥ ३ ॥

चब्बिश—चौबीसवें; **वत्सर**—वर्ष के; **शेष**—अन्त में; **ग्रेइ**—उस; **माघ-मास**—माघ मास (जनवरी-फरवरी); **तार**—उसका; **शुक्ल-पक्षे**—शुक्ल पक्ष में; **प्रभु**—महाप्रभु; **करिला**—स्वीकार किया; **सन्न्यास**—संन्यास आश्रम।

अनुवाद

चौबीसवें वर्ष के अन्त में माघ मास के शुक्लपक्ष में श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास आश्रम स्वीकार किया।

সন্ন্যাস করি' প্রেমাবেশে চলিলা বৃন্দাবন ।
রাঢ়-দেশে তিন দিন করিলা ভ্রমণ ॥৪॥

सन्न्यास करि' प्रेमावेशे चलिला वृन्दावन ।
राढ़-देशे तिन दिन करिला भ्रमण ॥ ४ ॥

सन्न्यास करि'—संन्यास लेने के बाद; **प्रेम-आवेशे**—कृष्ण के प्रगाढ़ प्रेम में; **चलिला**—चल पड़े; **वृन्दावन**—वृन्दावन धाम की ओर; **राढ़-देशे**—राढ़ प्रदेश में; **तिन दिन**—लगातार तीन दिन; **करिला**—किया; **भ्रमण**—भ्रमण।

अनुवाद

संन्यास ग्रहण करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के प्रगाढ़ प्रेमवश वृन्दावन के लिए चल पड़े। किन्तु भूल से वे लगातार तीन दिनों तक समाधि में राढ़ देश नामक भूखण्ड में भ्रमण करते रहे।

तात्पर्य

राढ़देश शब्द *राष्ट्र* अर्थात् राज्य से आता है। *राष्ट्र* शब्द बिगड़कर *राढ़* बना है। बंगाल का जो भाग गंगा के पश्चिम में है, वह राढ़देश कहलाता है। इसका अन्य नाम पौण्ड्र देश या पेण्डो देश है। पौण्ड्र शब्द के बिगड़ने पर *पेंडो* बनता

है। ऐसा लगता है कि राष्ट्र-देश की राजधानी बंगाल के इसी भाग में स्थित थी।

এই শ্লোক পড়ি' প্রভু ভাবের আবেশে ।
ভ্রমিতে পবিত্র কৈল সব রাঢ়-দেশে ॥৫॥

एइ श्लोक पड़ि' प्रभु भावेर आवेशे ।
भ्रमिते पवित्र कैल सब राढ़-देशे ॥५॥

एइ श्लोक—यह श्लोक; **पड़ि'**—पढ़कर; **प्रभु**—प्रभु; **भावेर**—भाव के; **आवेशे**—आवेश में; **भ्रमिते**—भ्रमण करके; **पवित्र**—पवित्र; **कैल**—किया; **सब राढ़-देशे**—राढ़ प्रदेश को।

अनुवाद

राढ़देश नामक भूभाग में भ्रमण करते समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने भावावेश में निम्नलिखित श्लोक सुनाया।

এতাং স আস্থায় পরাত্ম-নিষ্ঠাম্
অধ্যাসিতাং পূর্বতমৈর্মহদ্ভিঃ ।
অহং তরিষ্যামি দুরন্ত-পারং
তমো মুকুন্দাঙ্ঘ্রি-নিষেবয়ৈব ॥৬॥

एतां स आस्थाय परात्म-निष्ठाम्
अध्यासितां पूर्वतमैर्महद्भिः ।
अहं तरिष्यामि दुरन्त-पारं
तमो मुकुन्दाङ्घ्रि-निषेवयैव ॥६॥

एताम्—यह; **सः**—ऐसा; **आस्थाय**—पूर्णतया स्थिर होकर; **पर-आत्म-निष्ठाम्**—परम भगवान् कृष्ण की भक्ति; **अध्यासिताम्**—पूजा की; **पूर्व-तमैः**—पूर्ववर्ती; **महद्भिः**—आचार्य; **अहम्**—मैं; **तरिष्यामि**—पार करूँगा; **दुरन्त-पारम्**—अत्यन्त कठिन; **तमः**—अज्ञान के अंधकार का सागर; **मुकुन्द-अङ्घ्रि**—मुकुन्द के चरणकमलों की; **निषेवया**—पूजा से; **एव**—निश्चित रूप से।

अनुवाद

"[जैसाकि अवन्ती देश के एक ब्राह्मण ने कहा :] 'भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की सेवा में दृढ़तापूर्वक स्थिर होकर मैं अज्ञान के दुर्लंघ्य

सागर को पार कर जाऊँगा। इसकी पुष्टि उन पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा की गई है, जो परमात्मा, पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की दृढ़ भक्ति में स्थिर थे।'"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (११.२३.५७) से है। इस श्लोक के सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि भक्ति में जिन ६४ वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उनमें संन्यास के चिह्नों को स्वीकार करना एक नियम है। संन्यास स्वीकार करने पर मनुष्य का मुख्य कार्य मुकुन्द, कृष्ण की सेवा में अपना जीवन पूर्णरूपेण अर्पित करना होता है। यदि व्यक्ति अपने मन एवं शरीर को भगवान् की सेवा में पूर्णरूप से समर्पित नहीं करता, तो वह वास्तव में संन्यासी नहीं है। केवल वस्त्र बदलने से कोई संन्यासी नहीं हो जाता। *भगवद्गीता* (६.१) में भी कहा गया है—*अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः/ स संन्यासी च योगी च*—जो कृष्ण की तुष्टि के लिए एकचित्त होकर कार्य करता है, वह संन्यासी है। वस्त्र संन्यास नहीं है, अपितु कृष्ण के प्रति सेवा प्रवृत्ति ही संन्यास है।

परात्मनिष्ठा का अर्थ है भगवान् कृष्ण का भक्त बनना। *परात्मा* का अर्थ परम पुरुष कृष्ण है। *ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।* जो कृष्ण के चरणकमलों की सेवा में पूर्णतया समर्पित हैं, वे ही वास्तव में संन्यासी हैं। भक्त तो मात्र औपचारिकतावश पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुसरण करते हुए संन्यास-वस्त्र ग्रहण करता है। वह त्रिदंड भी धारण करता है। बाद में विष्णुस्वामी ने यह विचार व्यक्त किया कि त्रिदण्ड-वेश धारण करना *परात्मनिष्ठा* है। अतएव निष्ठावान भक्त इन तीन दण्डों के अतिरिक्त एक चौथे दण्ड, *जीव-दण्ड* को भी सम्मिलित करते हैं। वैष्णव संन्यासी *त्रिदण्डी सन्यासी* कहलाता है। किन्तु मायावादी संन्यासी त्रिदण्ड का उद्देश्य न समझ पाने के कारण केवल एक दण्ड धारण करता है। बाद में शिवस्वामी सम्प्रदाय के अनेक लोग *आत्मनिष्ठा* अर्थात् भगवद्-भक्ति त्यागकर शंकराचार्य के मार्ग का अनुसरण करने लगे। शिवस्वामी सम्प्रदाय वाले संन्यास के १०८ नामों के स्थान पर शंकराचार्य सम्प्रदाय के दस नाम स्वीकार करते हैं। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस समय प्रचलित संन्यास (*एक दण्ड*) ग्रहण किया था, फिर भी उन्होंने

श्रीमद्भागवत के उस श्लोक का उच्चारण किया, जो अवन्तीपुर के ब्राह्मण द्वारा *त्रिदण्ड संन्यास* ग्रहण करने के सम्बन्ध में था। उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से यह घोषित किया कि उस एकदण्ड के भीतर चतुर्दण्ड एकदण्ड के रूप में विद्यमान हैं। *परात्मनिष्ठा* (कृष्ण-भक्ति) के बिना श्री चैतन्य महाप्रभु को एकदण्ड संन्यास स्वीकार्य नहीं है। इसके अतिरिक्त, सही विधान के अनुसार त्रिदण्ड के साथ जीव-दण्ड को सम्मिलित करना चाहिए। ये चारों दण्ड एकसाथ बँधकर भगवान् की शुद्ध भक्ति के प्रतीक बन जाते हैं। चूँकि मायावादी एकदण्डी संन्यासी कृष्ण की सेवा को समर्पित नहीं होते, अतः वे ब्रह्मज्योति में समा जाने का प्रयास करते हैं, जो भौतिक और आध्यात्मिक अस्तित्व के बीच की अवस्था है। वे इस निर्विशेष स्थिति को मुक्ति मानते हैं। मायावादी संन्यासी श्री चैतन्य महाप्रभु को एकदण्डी संन्यासी ही मानते हैं, क्योंकि उन्हें यह पता नहीं है कि वे त्रिदण्डी संन्यासी थे। यह मायावादियों के *विवर्त* अर्थात् मोह के कारण है। *श्रीमद्भागवत* में एकदण्डी संन्यासी जैसी कोई वस्तु नहीं है। हाँ, त्रिदण्डी संन्यासी को संन्यास आश्रम का प्रतीक माना गया है। *श्रीमद्भागवत* के इस श्लोक का उच्चारण करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने *श्रीमद्भागवत* द्वारा संस्तुत संन्यास आश्रम ही स्वीकार किया था। भगवान् की बहिरंगा शक्ति से चमत्कृत रहने वाले मायावादी संन्यासी श्री चैतन्य महाप्रभु के मन की बात कभी नहीं समझ पायेंगे।

आज तक श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्त उनके पदचिह्नों पर चलते हुए संन्यास ग्रहण करते हैं, जनेऊ धारण करते हैं और चोटी रखते हैं। किन्तु मायावादी सम्प्रदाय के एकदण्डी संन्यासी न तो जनेऊ धारण करते हैं, न ही चोटी रखते हैं। इसलिए वे त्रिदण्ड संन्यास का तात्पर्य नहीं समझ सकते। फलस्वरूप वे मुकुन्द की सेवा के लिए अपना जीवन अर्पित करने की ओर उन्मुख नहीं होते। भौतिक संसार से घृणा होने के कारण वे ब्रह्म में समा जाने के बारे में ही सोचते रहते हैं। जो आचार्य *दैव वर्णाश्रम* का अनुमोदन करते हैं (*चातुर्वर्ण्यम्* जिसका उल्लेख *भगवद्गीता* में हुआ है), वे *आसुर वर्णाश्रम* की विचारधारा को नहीं मानते, जिसके अनुसार जन्म से ही वर्ण निर्धारित होता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु के सबसे अन्तरंग भक्त श्री गदाधर पण्डित ने त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया और श्री माधव उपाध्याय को अपने त्रिदण्डी संन्यासी-शिष्य के रूप में भी स्वीकार किया। कहते हैं कि इन्हीं माधवाचार्य से पश्चिम भारत में वल्लभाचार्य सम्प्रदाय का प्रचार हुआ। श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी, जो गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में स्मृत्याचार्य के नाम से विख्यात हैं, उन्होंने बाद में त्रिदण्डी-पाद प्रबोधानन्द सरस्वती से त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। यद्यपि गौड़ीय वैष्णव साहित्य में त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण करने का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु श्रील रूप गोस्वामी-कृत *उपदेशामृत* के प्रथम श्लोक में संस्तुति की गई है कि मनुष्य को छह वेगों को वश में करके त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण करना चाहिए :

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं
जिह्वावेगम् उदरोपस्थवेगम्।
एतान्वेगान्यो विषहेत धीरः
सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात्॥

"जो व्यक्ति वाणी, मन, क्रोध, उदर, जिह्वा तथा जननेन्द्रियों के आवेगों को नियन्त्रित कर सकता है, वह गोस्वामी कहलाता है और वह विश्व-भर में शिष्य बना सकता है।" श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों ने कभी भी मायावाद संन्यास स्वीकार नहीं किया; और इसके लिए उन पर कोई दोषारोपण नहीं किया जा सकता। श्री चैतन्य महाप्रभु ने त्रिदण्डी संन्यासी श्रीधर स्वामी को माना है, किन्तु मायावादी संन्यासी श्रीधर स्वामी को न समझ सकने के कारण यह सोचते हैं कि वे मायावाद के एकदण्ड संन्यास सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं था।

প্রভু কহে—সাধু এই ভিক্ষুর বচন ।
মুকুন্দ সেবন-ব্রত কৈল নির্ধারণ ॥ ৭॥

प्रभु कहे—साधु एइ भिक्षुर वचन ।
मुकुन्द सेवन-व्रत कैल निर्धारण ॥७॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **साधु**—साधु; **एइ**—यह; **भिक्षुर**—भिक्षु के; **वचन**—वचन; **मुकुन्द**—भगवान् कृष्ण; **सेवन-व्रत**—सेवा का व्रत; **कैल**—किया; **निर्धारण**—संकेत।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक के तात्पर्य का अनुमोदन भिक्षुक भक्त द्वारा भगवान् मुकुन्द की सेवा में लगने के संकल्प के कारण किया। उन्होंने इस श्लोक को अपनी सहमति दे दी, जिससे सूचित होता है कि यह श्लोक अत्युत्तम है।

পরাত্ম-নিষ্ঠা-মাত্র বেষ-ধারণ ।
মুকুন্দ-সেবায় হয় সংসার-তারণ ॥৮॥

परात्म-निष्ठा-मात्र वेष-धारण ।
मुकुन्द-सेवाय हय संसार-तारण ॥ ८ ॥

पर-आत्म-निष्ठा-मात्र—कृष्ण सेवा के संकल्प के लिए; **वेष-धारण**—वेशभूषा बदलना; **मुकुन्द-सेवाय**—मुकुन्द की सेवा करने से; **हय**—है; **संसार-तारण**—इस भौतिक बन्धन से मुक्ति।

अनुवाद

संन्यास स्वीकार करने का वास्तविक प्रयोजन मुकुन्द की सेवा में अपने आप को समर्पित करना है। मुकुन्द की सेवा करने से मनुष्य अवश्य ही भव-बन्धन से मुक्त हो सकता है।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास स्वीकार किया और अवन्तीपुर भिक्षु द्वारा मुकुन्द की सेवा करने के संकल्प की संस्तुति की। उन्होंने ब्राह्मण के वचन को उसके द्वारा मुकुन्द की सेवा करने के संकल्प के कारण स्वीकार किया। संन्यासी का वेश भौतिक शिष्टाचार के लिए सहायक होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु को ऐसा शिष्टाचार पसन्द नहीं था, किन्तु वे इसके सार रूप में मुकुन्द की सेवा चाहते थे। प्रत्येक दशा में ऐसा संकल्प *परात्मनिष्ठा* है और इसी की आवश्यकता है। निष्कर्ष यह है कि संन्यास आश्रम वेश पर नहीं, अपितु मुकुन्द की सेवा करने के संकल्प पर निर्भर करता है।

সেই বেষ কৈল, এবে বৃন্দাবন গিয়া ।
কৃষ্ণ-নিষেবণ করি নিভৃতে বসিয়া ॥৯॥

सेइ वेष कैल, एबे वृन्दावन गिया ।
कृष्ण-निषेवण करि निभृते वसिया ॥ ९ ॥

सेइ—वह; **वेष**—वेश; **कैल**—स्वीकार किया; **एबे**—अब; **वृन्दावन**—वृन्दावन धाम को; **गिया**—जाने का; **कृष्ण-निषेवण**—कृष्ण सेवा; **करि**—मैं करुँगा; **निभृते**—एकान्त स्थान में; **वसिया**—बैठकर।

अनुवाद

संन्यास स्वीकार करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन जाने और वहाँ एकान्त में पूर्ण मनोयोग से केवल मुकुन्द की सेवा में लग जाने का निश्चय किया।

এত বলি' চলে প্রভু, প্রেমোন্মাদের চিহ্ন ।
দিক্বিদিক্জ্ঞান নাহি, কিবা রাত্রি-দিন ॥১০॥

एत बलि' चले प्रभु, प्रेमोन्मादेर चिह्न ।
दिक्विदिक्ज्ञान नाहि, किबा रात्रि-दिन ॥ १० ॥

एत बलि'—यह कहकर; **चले प्रभु**—महाप्रभु चल पड़े; **प्रेम-उन्मादेर चिह्न**—प्रेम भाव के चिह्न; **दिक्-विदिक्-ज्ञान**—सही-गलत दिशा का ज्ञान; **नाहि**—नहीं; **किबा**—क्या; **रात्रि-दिन**—रात दिन।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन के रास्ते में थे, तब उनमें प्रेमोन्माद के सारे लक्षण प्रकट होने लगे। उन्हें इसका ज्ञान नहीं रहा कि वे किस दिशा में जा रहे हैं अथवा यह दिन है या रात।

নিত্যানন্দ, আচার্যরত্ন, মুকুন্দ, তিন জন ।
প্রভু-পাছে-পাছে তিনে করেন গমন ॥১১॥

नित्यानन्द, आचार्य्यरत्न, मुकुन्द, तिन जन ।
प्रभु-पाछे-पाछे तिने करेन गमन ॥ ११ ॥

नित्यानन्द—श्री नित्यानन्द प्रभु; **आचार्य्यरत्न**—चन्द्रशेखर; **मुकुन्द**—और मुकुन्द; **तिन जन**—तीन व्यक्ति; **प्रभु-पाछे-पाछे**—चैतन्य महाप्रभु के पीछे पीछे; **तिने**—वे तीनों; **करेन गमन**—जाते हैं।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन की ओर जा रहे थे, तब नित्यानन्द प्रभु, चन्द्रशेखर तथा मुकुन्द प्रभु उनके पीछे-पीछे चल रहे थे।

যেই যেই প্রভু দেখে, সেই সেই লোক ।
প্রেমাবেশে 'হরি' বলে, খণ্ডে দুঃখ-শোক ॥১২॥

ग्रेइ ग्रेइ प्रभु देखे, सेइ सेइ लोक ।
प्रेमावेशे 'हरि' बले, खण्डे दु:ख-शोक ॥ १२ ॥

ग्रेइ ग्रेइ—जो कोई; **प्रभु**—महाप्रभु को; **देखे**—देखता; **सेइ सेइ लोक**—वे लोग; **प्रेम-आवेशे**—प्रेमावेश में; **हरि बले**—"हरि" बोलते; **खण्डे**—नष्ट हो जाते; **दु:ख-शोक**—सभी प्रकार के भौतिक दु:ख और शोक।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु राढ़देश से होकर जा रहे थे, तो जो भी उन्हें देखता वह भावावेश में "हरि!" "हरि!" कह उठता। ज्योंही वे महाप्रभु के साथ कीर्तन करते, त्योंही उनके सारे सांसारिक दु:ख विनष्ट हो जाते।

গোপ-বালক সব প্রভুকে দেখিয়া ।
'হরি' 'হরি' বলি' ডাকে উচ্চ করিয়া ॥১৩॥

गोप-बालक सब प्रभुके देखिया ।
'हरि' 'हरि' बलि' डाके उच्च करिया ॥ १३ ॥

गोप-बालक सब—सभी गोपबालक; **प्रभुके देखिया**—महाप्रभु को देखकर; **हरि हरि बलि'**—"हरि हरि" ध्वनि करते हुए; **डाके**—पुकारते; **उच्च करिया**—ऊँची आवाज में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को जाते देखकर सारे ग्वालबाल उनके साथ चलने लगे और उच्च-स्वर से "हरि!" "हरि!" पुकारने लगे।

শুনি' তা-সবার নিকট গেলা গৌরহরি ।
'বল' 'বল' বলে সবার শিরে হস্ত ধরি' ॥১৪॥

शुनि' ता-सबार निकट गेला गौरहरि ।
'बल' 'बल' बले सबार शिरे हस्त धरि' ॥ १४॥

शुनि'—सुनकर; **ता-सबार**—उन सबके; **निकट**—निकट; **गेला**—गये; **गौरहरि**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **बल बल**—बोलते रहो, बोलते रहो; **बले**—उन्होंने कहा; **सबार**—उन सबके; **शिरे हस्त धरि'**—अपना हाथ उनके सिरों पर रखकर।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सभी ग्वालबालों को "हरि!" "हरि!" उच्चारण करते सुना, तो वे अत्यधिक प्रसन्न हुए। वे उनके पास गये, उनके सिर पर हाथ रखा और उनसे बोले, "इसी तरह कीर्तन करते रहो।"

তা'-সবার স্তুতি করে,—তোমরা ভাগ্যবান্ ।
কৃতার্থ করিলে মোরে শুনাঞা হরি-নাম ॥১৫॥

ता'-सबार स्तुति करे,—तोमरा भाग्यवान् ।
कृतार्थ करिले मोरे शुनाञा हरि-नाम ॥ १५॥

ता'-सबार—उन सबकी; **स्तुति करे**—भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने व्यवहार की प्रशंसा की; **तोमरा**—आप; **भाग्यवान्**—भाग्यवान; **कृत-अर्थ**—सफल; **करिले**—तुमने किया है; **मोरे**—मुझे; **शुनाञा**—सुनाकर; **हरि-नाम**—भगवान् हरि का पावन नाम।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबको यह कहते हुए आशीर्वाद दिया कि वे सभी भाग्यवान हैं। उन्होंने इस तरह उनकी प्रशंसा की और चूँकि उन लोगों ने पवित्र हरिनाम कीर्तन किया था, इसलिए महाप्रभु ने अपने आपको कृतार्थ समझा।

গুপ্তে তা-সবাকে আনি' ঠাকুর নিত্যানন্দ ।
শিখাইলা সবাকারে করিয়া প্রবন্ধ ॥১৬॥

गुप्ते ता-सबाके आनि' ठाकुर नित्यानन्द ।
शिखाइला सबाकारे करिया प्रबन्ध ॥ १६॥

गुप्ते—गुप्त रूप से; **ता-सबाके**—उन सभी ग्वालबालों को; **आनि'**—उनको लेकर; **ठाकुर नित्यानन्द**—नित्यानन्द ठाकुर; **शिखाइला**—सिखाया; **सबाकारे**—उन सबको; **करिया प्रबन्ध**—एक उचित कथा द्वारा।

अनुवाद

सारे बालकों को एकान्त में बुलाकर और एक तर्कपूर्ण कहानी बतलाते हुए नित्यानन्द प्रभु ने उन सबको इस प्रकार सूचना दी।

বৃন্দাবন-পথ প্রভু পুছেন তোমারে ।
গঙ্গা-তীর-পথ তবে দেখাইহ তাঁরে ॥ ১৭॥

वृन्दावन-पथ प्रभु पुछेन तोमारे ।
गङ्गा-तीर-पथ तबे देखाइह ताँरे ॥ १७॥

वृन्दावन-पथ—वृन्दावन के पथ पर; **प्रभु**—महाप्रभु; **पुछेन**—पूछें; **तोमारे**—तुम से; **गङ्गा तीर-पथ**—गंगा तट का मार्ग; **तबे**—उस समय; **देखाइह**—कृपया दिखाओ; **ताँरे**—उनको।

अनुवाद

"यदि श्री चैतन्य महाप्रभु तुम लोगों से वृन्दावन का रास्ता पूछें, तो उन्हें गंगा नदी के किनारे का रास्ता दिखला देना।"

তবে প্রভু পুছিলেন,—'শুন, শিশু-গণ ।
কহ দেখি, কোন্‌পথে যাব বৃন্দাবন' ॥ ১৮॥
শিশু সব গঙ্গা-তীর-পথ দেখাইল ।
সেই পথে আবেশে প্রভু গমন করিল ॥ ১৯॥

तबे प्रभु पुछिलेन,—'शुन, शिशु-गण ।
कह देखि, कोन्पथे ग्राब वृन्दावन' ॥ १८॥
शिशु सब गङ्गा-तीर-पथ देखाइल ।
सेइ पथे आवेशे प्रभु गमन करिल ॥ १९॥

तबे—तत्पश्चात्; **प्रभु**—महाप्रभु ने; **पुछिलेन**—पूछा; **शुन**—सुनो; **शिशु-गण**—हे बालकों; **कह देखि**—कृपया मुझे बताओ; **कोन् पथे**—किस मार्ग पर; **ग्राब**—मैं जाऊँ;

वृन्दावन—वृन्दावन जाने के लिए; **शिशु**—लड़के; **सब**—सब; **गङ्गा-तीर-पथ**—गंगा तट के पथ पर; **देखाइल**—दिखाया; **सेइ**—वह; **पथे**—मार्ग पर; **आवेशे**—आवेश में; **प्रभु**—महाप्रभु; **गमन करिल**—चल पड़े।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने ग्वालबालों से वृन्दावन का रास्ता पूछा, तो उन बालकों ने गंगा के किनारे वाला रास्ता बतला दिया और महाप्रभु भावावेश में उसी रास्ते चल पड़े।

আচার্যরত্নেরে কহে নিত্যানন্দ-গোসাঞি ।
শীঘ্র যাহ তুমি অদ্বৈত-আচার্যের ঠাঞি ॥২০॥

आचार्य्यरत्नेरे कहे नित्यानन्द-गोसाञि ।
शीघ्र य़ाह तुमि अद्वैत-आचार्य्येर ठाञि ॥ २० ॥

आचार्य्यरत्नेरे—चन्द्रशेखर आचार्य को; **कहे**—कहा; **नित्यानन्द-गोसाञि**—नित्यानन्द प्रभु ने; **शीघ्र**—शीघ्र; **य़ाह**—जाओ; **तुमि**—तुम; **अद्वैत-आचार्य्येर ठाञि**—अद्वैत आचार्य के घर।

अनुवाद

ज्योंही महाप्रभु गंगा के किनारे-किनारे चल पड़े, त्योंही श्री नित्यानन्द प्रभु ने आचार्यरत्न (चन्द्रशेखर आचार्य) को तुरन्त अद्वैत आचार्य के घर जाने के लिए कहा।

প্রভু লয়ে যাব আমি তাঁহার মন্দিরে ।
সাবধানে রহেন যেন নৌকা লঞা তীরে ॥২১॥

प्रभु लये य़ाब आमि ताँहार मन्दिरे ।
सावधाने रहेन य़ेन नौका लञा तीरे ॥ २१ ॥

प्रभु लये—महाप्रभु को लेकर; **य़ाब**—जाऊँगा; **आमि**—मैं; **ताँहार**—उनके; **मन्दिरे**—घर; **सावधाने**—बहुत सावधानी से; **रहेन**—वे रहें; **य़ेन**—वहाँ; **नौका**—नौका; **लञा**—लेकर; **तीरे**—तट पर।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द गोस्वामी ने उनसे कहा, "मैं श्री चैतन्य महाप्रभु को

शान्तिपुर में गंगा के तट पर ले जाऊँगा। आप अद्वैत आचार्य से कहें कि वे सावधान होकर एक नाव लेकर किनारे पर रहें।

তবে নবদ্বীপে তুমি করিহ গমন ।
শচী-সহ লঞা আইস সব ভক্ত-গণ ॥২২॥

तबे नवद्वीपे तुमि करिह गमन ।
शची-सह लञा आइस सब भक्त-गण ॥ २२ ॥

तबे—तत्पश्चात्; **नवद्वीपे**—नवद्वीप की ओर; **तुमि**—आप; **करिह**—करो; **गमन**—गमन; **शची-सह**—माता शची; **लञा**—साथ लेकर; **आइस**—लौट आना; **सब भक्त-गण**—सभी भक्तगण।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने आगे कहा, "उसके बाद मैं अद्वैत आचार्य के घर जाऊँगा और आप नवद्वीप जाकर माता शची तथा अन्य सभी भक्तों को लेकर लौट आना।"

তাঁরে পাঠাইয়া নিত্যানন্দ মহাশয় ।
মহাপ্রভুর আগে আসি' দিল পরিচয় ॥২৩॥

ताँरे पाठाइया नित्यानन्द महाशय ।
महाप्रभुर आगे आसि' दिल परिचय ॥ २३ ॥

ताँरे—उसको; **पाठाइया**—भेजकर; **नित्यानन्द**—प्रभु नित्यानन्द; **महा-आशय**—महाशय; **महाप्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **आगे**—आगे; **आसि'**—आकर; **दिल**—दिया; **परिचय**—परिचय।

अनुवाद

आचार्यरत्न को अद्वैत आचार्य के घर भेजकर श्री नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने आये और अपने आने की सूचना दी।

প্রভু কহে,—শ্রীপাদ, তোমার কোথাকে গমন ।
শ্রীপাদ কহে, তোমার সঙ্গে যাব বৃন্দাবন ॥২৪॥

प्रभु कहे,—श्रीपाद, तोमार कोथाके गमन ।
श्रीपाद कहे, तोमार सङ्गे ग्राब वृन्दावन ॥ २४॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने पूछा; **श्रीपाद**—महाशय; **तोमार**—आप; **कोथाके**—कहाँ; **गमन**—जा रहे हैं; **श्रीपाद कहे**—नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया; **तोमार**—आपके; **सङ्गे**—साथ; **ग्राब**—मैं जाऊँगा; **वृन्दावन**—वृन्दावन की ओर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में थे और उन्होंने पूछा कि नित्यानन्द प्रभु कहाँ जा रहे थे?" नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया कि वे महाप्रभु के साथ वृन्दावन जा रहे थे।"

প্রভু কহে,—কত দূরে আছে বৃন্দাবন ।
তেঁহো কহেন,—কর এই যমুনা দরশন ॥২৫॥

प्रभु कहे,—कत दूरे आछे वृन्दावन ।
तेंहो कहेन,—कर एइ ग्रमुना दरशन ॥ २५॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **कत दूरे**—कितनी दूर ; **आछे**—है; **वृन्दावन**—वृन्दावन धाम; **तेंहो कहेन**—उन्होंने उत्तर दिया; **कर**—करो; **एइ**—यह; **ग्रमुना**—यमुना नदी का; **दरशन**—दर्शन।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु से पूछा कि अब वृन्दावन कितनी दूर है, तो नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया "देखिये! यह रही यमुना नदी।"

এত বলি' আনিল তাঁরে গঙ্গা-সন্নিধানে ।
আবেশে প্রভুর হৈল গঙ্গারে যমুনা-জ্ঞানে ॥২৬॥

एत बलि' आनिल ताँरे गङ्गा-सन्निधाने ।
आवेशे प्रभुर हैल गङ्गारे ग्रमुना-ज्ञाने ॥ २६॥

एत बलि'—यह कहकर; **आनिल**—वे लाये; **ताँरे**—उनको; **गङ्गा-सन्निधाने**—गंगा के निकट; **आवेशे**—भावावेश में; **प्रभुर**—महाप्रभु का; **हैल**—था; **गङ्गारे**—गंगा नदी का; **ग्रमुना-ज्ञाने**—यमुना नदी मान लेना।

अनुवाद

यह कहकर नित्यानन्द प्रभु उन्हें गंगा नदी के पास ले गये और श्री चैतन्य महाप्रभु ने भावावेश के कारण गंगा नदी को ही यमुना नदी के रूप में स्वीकार कर लिया।

অহো ভাগ্য, যমুনারে পাইলুঁ দরশন ।
এত বলি' যমুনার করেন স্তবন ॥২৭॥

अहो भाग्य, ग्रमुनारे पाइलुँ दरशन ।
एत बलि' ग्रमुनार करेन स्तवन ॥ २७॥

अहो भाग्य—अहो भाग्य!; **ग्रमुनारे**—यमुना नदी का; **पाइलुँ**—मैंने पा लिया है; **दरशन**—दर्शन; **एत बलि'**—यह कहकर; **ग्रमुनार**—यमुना नदी की; **करेन**—करने लगे; **स्तवन**—स्तुति।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "ओह, कितना सौभाग्य है! आज मुझे यमुना नदी के दर्शन हुए हैं।" इस तरह गंगा को ही यमुना नदी मानकर उन्होंने उसकी स्तुति करनी प्रारम्भ की।

চিদানন্দ-ভানোঃ সদা নন্দ-সূনোঃ
পর-প্রেম-পাত্রী দ্রব-ব্রহ্ম-গাত্রী ।
অঘানাং লবিত্রী জগৎক্ষেম-ধাত্রী
পবিত্রী-ক্রিয়ান্নো বপুর্মিত্র-পুত্রী ॥২৮॥

चिदानन्द-भानोः सदा नन्द-सूनोः
पर-प्रेम-पात्री द्रव-ब्रह्म-गात्री ।
अघानां लवित्री जगत्क्षेम-धात्री
पवित्री-क्रियान्नो वपुर्मित्र-पुत्री ॥ २८॥

चित्-आनन्द-भानोः—आध्यात्मिक शक्ति व आनन्द की साक्षात् मूर्ति; **सदा**—सदा; **नन्द-सूनोः**—महाराज नन्द के पुत्र का; **पर-प्रेम-पात्री**—सर्वोपरि प्रेम प्रदान करने वाली; **द्रव-ब्रह्म-गात्री**—वैकुण्ठ लोक के जल से निर्मित; **अघानाम्**—सभी पापों तथा अपराधों का; **लवित्री**—नाश करने वाली; **जगत्-क्षेम-धात्री**—जगत् कल्याण के कर्ता; **पवित्री-क्रियात्**—कृपया पवित्र करो; **नः**—हमारा; **वपुः**—शरीर; **मित्र-पुत्री**—सूर्यदेव की पुत्री।

अनुवाद

"हे यमुना नदी, तुम वह आनन्दमय दिव्य जल हो, जो नन्द महाराज के पुत्र को प्रेम प्रदान करता है। तुम वैकुण्ठ लोक के जल के ही समान हो, क्योंकि तुम हमारे पूरे जीवन में किये गये सारे अपराधों एवं पापफलों को नष्ट करने वाली हो। तुम संसार के लिए सभी मंगल वस्तुओं की जननी हो। हे सूर्यदेव की पुत्री, कृपया तुम अपने पुण्यकर्मों से हम सबको शुद्ध कर दो।"

तात्पर्य

यह श्लोक कवि कर्णपूर-कृत *चैतन्य चन्द्रोदय नाटक* (५.१३) में अंकित है।

এত বলি' নমস্করি' কৈল গঙ্গা-স্নান ।
এক কৌপীন, নাহি দ্বিতীয় পরিধান ॥২৯॥

एत बलि' नमस्करि' कैल गङ्गा-स्नान ।
एक कौपीन, नाहि द्वितीय परिधान ॥ २९ ॥

एत बलि'—यह कहकर; **नमस्करि'**—नमस्कार करके; **कैल**—किया; **गङ्गा-स्नान**—गंगा स्नान; **एक कौपीन**—मात्र एक कौपीन; **नाहि**—नहीं था; **द्वितीय**—और कोई; **परिधान**—वस्त्र।

अनुवाद

इस मन्त्र का उच्चारण करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने नमस्कार करके गंगा नदी में स्नान किया। उस समय उनके पास एक ही कौपीन था, कोई दूसरा वस्त्र नहीं था।

হেন কালে আচার্য-গোসাঞি নৌকাতে চড়িঞা ।
আইল নূতন কৌপীন-বহির্বাস লঞা ॥৩০॥

हेन काले आचार्य-गोसाञि नौकाते चड़िञा ।
आइल नूतन कौपीन-बहिर्वास लञा ॥ ३० ॥

हेन काले—उस समय; **आचार्य-गोसाञि**—अद्वैत आचार्य प्रभु; **नौकाते चड़िञा**—

नौका पर; **आइल**—वहाँ पहुँचे; **नूतन**—नई; **कौपीन**—कौपीन; **बहिः-वास**—बाह्य वस्त्र; **लञा**—लाकर।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ दूसरे वस्त्र के बिना खड़े थे, तब अद्वैत आचार्य अपने साथ नया कौपीन तथा बाह्य वस्त्र लेकर नाव से वहाँ आये।

আগে আচার্য আসি' রহিলা নমস্কার করি' ।
আচার্য দেখি' বলে প্রভু মনে সংশয় করি' ॥৩১॥

आगे आचार्य्र आसि' रहिला नमस्कार करि' ।
आचार्य्र देखि' बले प्रभु मने संशय करि' ॥ ३१ ॥

आगे—आगे, सामने; **आचार्य्र**—अद्वैत आचार्य; **आसि'**—आकर; **रहिला**—खड़े हो गये; **नमस्कार करि'**—नमस्कार करके; **आचार्य्र देखि'**—अद्वैत आचार्य को देखकर; **बले**—कहने लगे; **प्रभु**—महाप्रभु; **मने**—अपने मन में; **संशय करि'**—संशय सहित।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य आकर महाप्रभु के समक्ष प्रस्तुत हुए और उन्हें नमस्कार किया। उन्हें देखकर महाप्रभु को सारी परिस्थिति के विषय में सन्देह होने लगा।

তুমি ত' আচার্য-গোসাঞি, এথা কেনে আইলা ।
আমি বৃন্দাবনে, তুমি কে-মতে জানিলা ॥৩২॥

तुमि त' आचार्य्र-गोसाञि, एथा केने आइला ।
आमि वृन्दावने, तुमि के-मते जानिला ॥ ३२ ॥

तुमि—आप हैं; **त'**—निश्चित रूप से; **आचार्य्र-गोसाञि**—अद्वैत आचार्य; **एथा**—यहाँ; **केने**—कैसे; **आइला**—आप आये हैं; **आमि**—मैं; **वृन्दावने**—वृन्दावन में; **तुमि**—आप; **के-मते**—कैसे; **जानिला**—जान गये।

अनुवाद

भावावेश में ही महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य से पूछा, "आप यहाँ क्यों आये? आपको कैसे पता चला कि मैं वृन्दावन में हूँ?"

আচার্য কহে—তুমি যাহাঁ, সেই বৃন্দাবন ।
মোর ভাগ্যে গঙ্গা-তীরে তোমার আগমন ॥৩৩॥

आचार्य्य कहे—तुमि य्राहाँ, सेइ वृन्दावन ।
मोर भाग्ये गङ्गा-तीरे तोमार आगमन ॥ ३३ ॥

आचार्य्य कहे—आचार्य ने उत्तर दिया; **तुमि य्राहाँ**—जहाँ कहीं आप हैं; **सेइ**—वही; **वृन्दावन**—वृन्दावन; **मोर भाग्ये**—मेरे महाभाग्य से; **गङ्गा-तीरे**—गंगा के तीर पर; **तोमार आगमन**—आपका आगमन।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से यह कहकर सारी स्थिति स्पष्ट कर दी, "आप जहाँ हैं, वहीं वृन्दावन है। यह तो मेरा परम सौभाग्य है कि आप गंगा नदी के तट पर आये हैं।"

প্রভু কহে,—নিত্যানন্দ আমারে বঞ্চিলা ।
গঙ্গাকে আনিয়া মোরে যমুনা কহিলা ॥৩৪॥

प्रभु कहे,—नित्यानन्द आमारे वञ्चिला ।
गङ्गाके आनिया मोरे य्रमुना कहिला ॥ ३४ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **नित्यानन्द**—नित्यानन्द प्रभु ने; **आमारे**—मुझे; **वञ्चिला**—धोखा दिया है; **गङ्गाके**—गंगा तट; **आनिया**—लाकर; **मोरे**—मुझे; **य्रमुना**—यमुना नदी; **कहिला**—बताई।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "नित्यानन्द ने मुझे धोखा दिया है। वह मुझे गंगा के तट पर ले आये और मुझसे यह बतलाया है कि यह यमुना है।"

আচার্য কহে, মিথ্যা নহে শ্রীপাদ-বচন ।
যমুনাতে স্নান তুমি করিলা এখন ॥৩৫॥

आचार्य्य कहे, मिथ्या नहे श्रीपाद-वचन ।
य्रमुनाते स्नान तुमि करिला एखन ॥ ३५ ॥

आचार्य कहे—श्री अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया; **मिथ्या नहे**—यह झूठ नहीं है; **श्रीपाद-वचन**—श्री नित्यानन्द प्रभु का कथन; **यमुनाते**—यमुना नदी में; **स्नान**—स्नान; **तुमि**—आपने; **करिला**—किया; **एखन**—अभी।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द पर धोखा देने का आरोप लगाया, तो श्रील अद्वैत आचार्य ने कहा, "नित्यानन्द प्रभु ने आपसे जो कुछ कहा है, वह झूठ नहीं है। आपने सचमुच अभी यमुना नदी में स्नान किया है।"

গঙ্গায় যমুনা বহে হঞা এক-ধার ।
পশ্চিমে যমুনা বহে, পূর্বে গঙ্গা-ধার ॥৩৬॥

गङ्गाय यमुना वहे हञा एक-धार ।
पश्चिमे यमुना वहे, पूर्वे गङ्गा-धार ॥ ३६ ॥

गङ्गाय—गंगा नदी के साथ; **यमुना**—यमुना नदी; **वहे**—बहती है; **हञा**—होकर; **एक-धार**—एक साथ; **पश्चिमे**—पश्चिम की ओर; **यमुना**—यमुना नदी; **वहे**—बहती है; **पूर्वे**—पूर्व की ओर; **गङ्गा-धार**—गंगा की धार।

अनुवाद

फिर अद्वैत आचार्य ने समझाया कि उस स्थान पर गंगा तथा यमुना दोनों साथ-साथ बहती हैं। पश्चिम की ओर यमुना है और पूर्व की ओर गंगा है।

तात्पर्य

गंगा तथा यमुना दोनों इलाहाबाद (प्रयाग) में संगम करती हैं। यमुना पश्चिम से बहकर आती है और गंगा पूर्व से और फिर दोनों मिल जाती हैं। चूँकि चैतन्य महाप्रभु ने पश्चिम की ओर स्नान किया था, अतएव उन्होंने वास्तव में यमुना नदी में स्नान किया था।

পশ্চিম-ধারে যমুনা বহে, তাহাঁ কৈলে স্নান ।
আর্দ্র কৌপীন ছাড়ি' শুষ্ক কর পরিধান ॥৩৭॥

पश्चिम-धारे यमुना वहे, ताहाँ कैले स्नान ।
आर्द्र कौपीन छाड़ि' शुष्क कर परिधान ॥ ३७॥

पश्चिम-धारे—पश्चिमी धारा में; **यमुना**—यमुना नदी; **वहे**—बहती है; **ताहाँ**—वहाँ; **कैले**—आपने किया; **स्नान**—स्नान; **आर्द्र**—गीला; **कौपीन**—कौपीन; **छाड़ि'**—छोड़कर; **शुष्क**—शुष्क; **कर**—करो; **परिधान**—पहन।

अनुवाद

फिर अद्वैत आचार्य ने प्रार्थना की कि यमुना नदी में स्नान करने के कारण चैतन्य महाप्रभु का कौपीन गीला हो गया है, अतएव उन्हें अपना कौपीन बदलकर सूखा वस्त्र पहन लेना चाहिए।

প্রেমাবেশে তিন দিন আছ উপবাস ।
আজি মোর ঘরে ভিক্ষা, চল মোর বাস ॥৩৮॥

प्रेमावेशे तिन दिन आछ उपवास ।
आजि मोर घरे भिक्षा, चल मोर वास ॥ ३८॥

प्रेम-आवेशे—प्रेमावेश में; **तिन दिन**—तीन दिन; **आछ**—आप हैं; **उपवास**—उपवास पर; **आजि**—आज; **मोर**—मेरे; **घरे**—घर पर; **भिक्षा**—भिक्षा; **चल**—कृपया आओ; **मोर वास**—मेरे निवासस्थान पर।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "कृष्ण-प्रेम के भावावेश में आप तीन दिन से अनवरत उपवास करते आ रहे हैं, अतएव मैं आपको अपने घर पर भिक्षा ग्रहण करने के लिये आमन्त्रित करता हूँ। आप मेरे साथ मेरे घर चलें।"

এক-মুষ্টি অন্ন মুঞি করিয়াছোঁ পাক ।
শুখারুখা ব্যঞ্জন কৈলুঁ, সূপ আর শাক ॥৩৯॥

एक-मुष्टि अन्न मुञि करियाछों पाक ।
शुखारुखा व्यञ्जन कैलुँ, सूप आर शाक ॥ ३९॥

एक-मुष्टि—एक मुट्ठी; **अन्न**—भात; **मुञि**—मैंने; **करियाछों**—बनाया है; **पाक**—

पकाकर; **शुखा-रुखा**—सूखा रुखा; **व्यञ्जन**—व्यंजन; **कैलुँ**—मैंने बनाया है; **सूप**—सब्जियों की तरी; **आर**—और; **शाक**—साग।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने आगे कहा, "मैंने अपने घर में मुट्ठी-भर चावल पकाया है। तरकारियाँ भी अत्यन्त सादी हैं। कोई भी विलासप्रिय व्यंजन नहीं है—केवल थोड़ा सूप है और कुछ शाक है।"

এত বলি' নৌকায় চড়াঞা নিল নিজ-ঘর ।
পাদ-প্রক্ষালন কৈল আনন্দ-অন্তর ॥৪০॥

एत बलि' नौकाय चड़ाञा निल निज-घर ।
पाद-प्रक्षालन कैल आनन्द-अन्तर ॥ ४० ॥

एत बलि'—यह कहकर; **नौकाय चड़ाञा**—नौका पर बैठाकर; **निल**—ले गये; **निज-घर**—अपने घर; **पाद-प्रक्षालन**—चरणकमल धोकर; **कैल**—किया; **आनन्द-अन्तर**—अपने अन्दर आनन्द।

अनुवाद

यह कहकर श्री अद्वैत आचार्य उन्हें नाव में बैठाकर अपने घर ले आये। वहाँ पर अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु के चरण प्रक्षालन किये और इस तरह भीतर-भीतर परम आनन्दित हुए।

প্রথমে পাক করিয়াছেন আচার্যাণী ।
বিষ্ণু-সমর্পণ কৈল আচার্য আপনি ॥৪১॥

प्रथमे पाक करियाछेन आचार्य्याणी ।
विष्णु-समर्पण कैल आचार्य्य आपनि ॥ ४१ ॥

प्रथमे—पहले; **पाक**—पकाया; **करियाछेन**—किया; **आचार्य्याणी**—अद्वैत आचार्य की पत्नी ने; **विष्णु-समर्पण**—भगवान् विष्णु को अर्पित करके; **कैल**—किया; **आचार्य्य**—अद्वैत आचार्य; **आपनि**—स्वयं।

अनुवाद

सर्वप्रथम अद्वैत आचार्य की पत्नी ने सारे पकवान बनाये। तत्पश्चात् स्वयं श्रील अद्वैत आचार्य ने हर वस्तु भगवान् विष्णु को अर्पित की।

तात्पर्य

यह आदर्श गृहस्थ जीवन है। पति तथा पत्नी एकसाथ रहते हैं और पति भगवान् विष्णु की पूजा के लिए सामग्री एकत्र करने हेतु कठिन श्रम करता है। पत्नी घर पर भगवान् विष्णु के लिए तरह-तरह के पकवान बनाती है और पति उन्हें अर्चाविग्रह को अर्पित करता है। इसके बाद आरती की जाती है और परिजनों तथा अतिथियों को प्रसाद दिया जाता है। वैदिक नियमों के अनुसार गृहस्थ के घर में कोई-न-कोई अतिथि सदैव रहना चाहिए। अपने बचपन में मैंने देखा है कि मेरे पिता के घर प्रतिदिन कम-से-कम चार अतिथि आया करते थे, यद्यपि उन दिनों मेरे पिता की आय अधिक नहीं थी। फिर भी प्रतिदिन कम-से-कम चार अतिथियों को प्रसाद देने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। वैदिक नियमों के अनुसार गृहस्थ को चाहिए कि दोपहर का भोजन करने के पूर्व घर से बाहर निकलकर पुकारे कि कोई बिना खाये तो नहीं है। इस तरह वह लोगों को प्रसाद के लिए बुलाता है। यदि कोई आ जाता है, तो वह उसे प्रसाद देता है और यदि अधिक न बचा हो, तो उसे अपने हिस्से में से अतिथि को देना चाहिए। यदि बुलाने पर कोई नहीं आता, तो गृहस्थ अपना भोजन ग्रहण कर सकता है। इस तरह गृहस्थ का जीवन भी एक तरह की तपस्या है। इसी कारण गृहस्थ का जीवन *गृहस्थ-आश्रम* कहलाता है। अपनी पत्नी और बच्चों के साथ कृष्णभावनामृत में सुखपूर्वक रहते हुए भी भक्त किसी भी मन्दिर में पालन किये जाने वाले नियमों को भी निभाता है। कृष्णभावनामृत के बिना वह घर *गृहमेधी* का घर कहलाता है। कृष्णभावनामृत से युक्त गृहस्थ वास्तविक गृहस्थ होते हैं अर्थात् वे अपने परिवार तथा अपनी सन्तान के साथ *आश्रम* में रहते हैं। श्री अद्वैत प्रभु आदर्श गृहस्थ थे और उनका घर आदर्श गृहस्थ आश्रम था।

তিন ঠাঞি ভোগ বাড়াইল সম করি' ।
কৃষ্ণের ভোগ বাড়াইল ধাতু-পাত্রোপরি ॥ ৪২ ॥

तिन ठाञि भोग बाड़ाइल सम करि' ।
कृष्णेर भोग बाड़ाइल धातु-पात्रोपरि ॥ ४२ ॥

तिन ठाञि—तीन स्थानों में; **भोग**—भोग (भोजन); **बाड़ाइल**—बाँटकर; **सम**—एक जैसा भाग; **करि'**—करके; **कृष्णेर भोग**—कृष्ण का भोग; **बाड़ाइल**—रखा गया; **धातु-पात्र उपरि**—धातु की थाली पर।

अनुवाद

सारे पकाये गये भोग के तीन बराबर भाग किये गये। एक भाग भगवान् कृष्ण को अर्पित करने के लिए धातु की थाली पर परोसा गया।

तात्पर्य

बाड़ाइल का अर्थ है "बढ़ा हुआ" जो इस श्लोक में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह शब्द बंगाल में गृहस्थों में प्रचलित अत्यन्त शिष्ट शब्द है। जब प्रस्तुत भोजन में से एक अंश निकाल लिया जाता है, तो वह वास्तव में घट जाता है। किन्तु बंगाल में इसे *बाढ़ाइल* अर्थात् "बढ़ा हुआ" कहने का प्रचलन है। यदि कृष्ण के लिए भोजन प्रस्तुत किया जाता है और फिर उसे कृष्ण तथा वैष्णवों को अर्पित किया जाता है, तो मात्रा बढ़ जाती है, कभी घटती नहीं।

বত্তিশা-আঠিয়া-কলার আঙ্গটিয়া পাতে ।
দুই ঠাঞি ভোগ বাড়াইল ভাল মতে ॥ ৪৩ ॥

बत्तिशा-आठिया-कलार आङ्गटिया पाते ।
दुइ ठाञि भोग बाड़ाइल भाल मते ॥ ४३ ॥

बत्तिशा-आठिया—बत्तीस गुच्छों वाले; **कलार**—केले के पेड़ के; **आङ्गटिया**—साबुत; **पाते**—पत्तों पर; **दुइ ठाञि**—दो जगह; **भोग**—भोग; **बाड़ाइल**—रखा गया; **भाल मते**—सुन्दर ढंग से।

अनुवाद

तीन भागों में से एक भाग धातु की थाली पर रखा गया था और शेष दो भाग केले के पत्तों पर। ये पत्तियाँ बीच से विभाजित नहीं थीं और ऐसे केले के वृक्ष से ली गई थीं, जिसमें कम-से-कम बत्तीस केले के गुच्छे लगे थे। इन दोनों पत्तों में निम्नलिखित व्यंजन सुन्दर ढंग से भरकर रखे गये थे।

মধ্যে পীত-ঘৃত-সিক্ত শাল্যন্নের স্তূপ ।
চারি-দিকে ব্যঞ্জন-ডোঙ্গা, আর মুদগ-সূপ ॥ ৪৪ ॥

मध्ये पीत-घृत-सिक्त शाल्यन्नेर स्तूप ।
चारि-दिके व्यञ्जन-डोङ्गा, आर मुद्ग-सूप ॥ ४४ ॥

मध्ये—मध्य में; **पीत**—पीले रंग के; **घृत-सिक्त**—घी से सना; **शालि-अन्नेर**—भलीभाँति पके भात का; **स्तूप**—एक ढेर; **चारि-दिके**—भाते के ढेर के चारों ओर; **व्यञ्जन-डोङ्गा**—सब्जियों के पात्र; **आर**—और; **मुद्ग-सूप**—कुटी मूँग की दाल।

अनुवाद

प्रवीणता से पके चावल का ढेर अत्यन्त सुन्दर दाने वाला था और बीच में गाय के दूध से बनाया गया पीले रंग का घी था। चावल के ढेर के चारों ओर केले के पेड़ों की छाल से बने पात्र थे, जिनमें तरह तरह की तरकारियाँ तथा मूँग की दाल थी।

সার্দ্রক, বাস্তুক-শাক বিবিধ প্রকার ।
পটোল, কুষ্মাণ্ড-বড়ি, মানকচু আর ॥ ৪৫ ॥

सार्द्रक, वास्तुक-शाक विविध प्रकार ।
पटोल, कुष्माण्ड-बड़ि, मानकचु आर ॥ ४५ ॥

सार्द्रक—अदरक की सब्जियों के पात्र; **वास्तुक-शाक**—पालक; **विविध**—नाना; **प्रकार**—प्रकार; **पटोल**—एक प्रकार की सब्जी; **कुष्माण्ड**—सीताफल; **बड़ि**—कुटी दाल सहित; **मानकचु**—कचू सब्जी के वृक्ष की जड़; **आर**—और।

अनुवाद

पकी तरकारियों में पटोला, सीताफल, मानकचु था तथा अदरक के टुकड़ों और विभिन्न प्रकार की पालक से बना सलाद था।

চই-মরিচ-সুখ্‌ত দিয়া সব ফল-মূলে ।
অমৃত-নিন্দক পঞ্চ-বিধ তিক্ত-ঝালে ॥ ৪৬ ॥

चइ-मरिच-सुख्त दिया सब फल-मूले ।
अमृत-निन्दक पञ्च-विध तिक्त-झाले ॥ ४६ ॥

चइ-मरिच—काली मिर्च और चई मसाला; **सुक्त**—कड़वी सब्जियाँ; **दिया**—परोसा; **सब**—सब; **फल-मूले**—नाना प्रकार के फल-मूल; **अमृत-निन्दक**—अमृत को मात करने वाले; **पञ्च-विध**—पाँच प्रकार के; **तिक्त**—कड़वे; **झाले**—और तीखे।

अनुवाद

सभी प्रकार की तरकारियों के साथ सुक्त, करेला मिला था, जो अमृत के स्वाद को मात करने वाला था। कड़वे तथा चरपरे सुक्त पाँच प्रकार के थे।

কোমল নিম্ব-পত্র সহ ভাজা বার্তাকী ।
পটোল-ফুল-বড়ি-ভাজা, কুষ্মাণ্ড-মানচাকি ॥ ৪৭ ॥

कोमल निम्ब-पत्र सह भाजा वार्ताकी ।
पटोल-फुल-बड़ि-भाजा, कुष्माण्ड-मानचाकि ॥ ४७ ॥

कोमल—कोमल; **निम्ब-पत्र**—नीम के पत्ते; **सह**—के साथ; **भाजा**—तले हुए; **वार्ताकी**—बैंगन; **पटोल**—पटोल फल सहित; **फुल-बड़ि**—फूल बड़ी (दाल से बनी); **भाजा**—तली हुई; **कुष्माण्ड**—सीताफल; **मानचाकि**—मानचाकी नामक खाद्य।

अनुवाद

विविध तरकारियों में नीम की ताजा मुलायम पत्तियों को बैंगन के साथ तला गया था। पटोल फल को फुलबड़ी (दाल से बनाया गया एक व्यंजन जिसे पहले मसला जाता है और फिर सुखाया जाता है) के साथ तला गया था। कुष्माण्ड-मानचाकि नामक व्यंजन भी था।

तात्पर्य

पाकशास्त्र के सम्पादकों से प्रार्थना है कि वे श्रील कविराज गोस्वामी द्वारा वर्णन किये गये इन सारे व्यंजनों को अपनी पुस्तक में सम्मिलित कर लें।

নারিকেল-শস্য, ছানা, শর্করা মধুর ।
মোচা-ঘণ্ট, দুগ্ধ-কুষ্মাণ্ড, সকল প্রচুর ॥ ৪৮ ॥

नारिकेल-शस्य, छाना, शर्करा मधुर ।
मोचा-घण्ट, दुग्ध-कुष्माण्ड, सकल प्रचुर ॥ ४८ ॥

नारिकेल-शस्य—नारियल का गूदा; **छाना**—दही; **शर्करा**—शक्कर; **मधुर**—अत्यन्त मधुर; **मोचा-घण्ट**—केले के फूलों से बना रसमिसा पकवान; **दुग्ध-कुष्माण्ड**—दुग्ध कुश्मांड (ताजे उगे कद्दू के टुकडों को काटकर, दूध में उबालकर बनाया गया पकवान); **सकल**—सब; **प्रचुर**—पर्याप्त मात्रा में।

अनुवाद

नारियल के गूदे, दही तथा मिश्री से बना व्यंजन अत्यन्त मीठा था। दूध में पकाये गये सीताफल और केले के फूलों की सब्जी प्रचुर मात्रा में थी।

মধুরাম্ল-বড়া, অম্লাদি পাঁচ-ছয় ।
সকল ব্যঞ্জন কৈল লোকে যত হয় ॥ ৪৯॥

मधुराम्ल-बड़ा, अम्लादि पाँच-छय ।
सकल व्यञ्जन कैल लोके य़त हय ॥ ४९ ॥

मधुर-अम्ल-बड़ा—मीठी और खट्टी टिक्कियाँ; **अम्ल-आदि**—खट्टे पदार्थ; **पाँच-छय**—पाँच या छः; **सकल व्यञ्जन**—सभी व्यंजन; **कैल**—बनाए; **लोके**—लोगों के लिए; **य़त हय**—जितने थे उनके लिए।

अनुवाद

मीठी तथा खट्टी चटनी में तैयार की गई छोटी टिक्कियाँ और पाँच-छः तरह के खट्टे व्यंजन थे। सारी तरकारियाँ इतनी बनाई गई थीं कि वहाँ पर उपस्थित सारे लोग प्रसाद-रूप में ग्रहण कर सकें।

মুদ্গ-বড়া, কলা-বড়া, মাষ-বড়া, মিষ্ট ।
ক্ষীর-পুলী, নারিকেল, যত পিঠা ইষ্ট ॥ ৫০॥

मुद्ग-बड़ा, कला-बड़ा, माष-बड़ा, मिष्ट ।
क्षीर-पुली, नारिकेल, य़त पिठा इष्ट ॥ ५० ॥

मुद्ग-बड़ा—मूंग के नर्म बड़े; **कला-बड़ा**—तले हुए केले से बने नर्म बड़े; **माष-बड़ा**—उड़द की दाल से बनाए गये नर्म बड़े; **मिष्ट**—नाना प्रकार की मिठाइयाँ; **क्षीर-पुली**—क्षीर पुली; **नारिकेल**—नारियल से बना पकवान; **य़त**—सभी प्रकार के बड़े; **पिठा**—टिक्की; **इष्ट**—स्वादिष्ट।

अनुवाद

मूँग की दाल के नर्म बड़े, पके केले से बने नर्म बड़े, उड़द की दाल से बने नर्म बड़े, तरह तरह की मिठाइयाँ, क्षीरपुली (चावल के बड़े खीर के साथ), नारियल से बना व्यंजन तथा सभी प्रकार के बड़े थे।

বত্তিশা-আঠিয়া কলার ডোঙ্গা বড় বড় ।
চলে হালে নাহি,—ডোঙ্গা অতি বড় দড় ॥ ৫১॥

बत्तिशा-आठिया कलार डोङ्गा बड़ बड़ ।
चले हाले नाहि,—डोङ्गा अति बड़ दड़ ॥ ५१ ॥

बत्तिशा-आठिया—केलों के बत्तीस गुच्छे; **कलार**—केले के वृक्ष के; **डोङ्गा**—डोंगे (पत्तों से बने पात्र); **बड़ बड़**—बड़े बड़े; **चले हाले नाहि**—जो हिलने डुलने वाले न थे; **डोङ्गा**—डोंगे (पात्र); **अति**—बहुत; **बड़**—बड़े; **दड़**—मजबूत।

अनुवाद

सारी तरकारियाँ केले के ऐसे वृक्षों के पत्तों से बने दोनों में परोसी गई थीं, जिनमें कम-से-कम केले के बत्तीस गुच्छे लगे थे। ये दोने काफी मजबूत और बड़े थे और इधर-उधर हिलने-डुलने वाले नहीं थे, न ही तिरछे होने वाले थे।

পঞ্চাশ পঞ্চাশ ডোঙ্গা ব্যঞ্জনে পূরিঞা ।
তিন ভোগের আশে পাশে রাখিল ধরিঞা ॥ ৫২॥

पञ्चाश पञ्चाश डोङ्गा व्यञ्जने पूरिञा ।
तिन भोगेर आशे पाशे राखिल धरिञा ॥ ५२ ॥

पञ्चाश पञ्चाश—पचास-पचास; **डोङ्गा**—डोंगे; **व्यञ्जने**—व्यंजनों से; **पूरिञा**—भरकर; **तिन**—तीन; **भोगेर**—खाने के स्थानों के; **आशे पाशे**—आसपास; **राखिल**—रखे; **धरिञा**—स्थिर करके।

अनुवाद

भोजन करने के तीनों स्थानों के चारों ओर तरह तरह की तरकारियों से भरे एक सौ दोने थे।

সঘৃত-পায়স নব-মৃৎকুণ্ডিকা ভরিঞা ।
তিন পাত্রে ঘনাবর্ত-দুগ্ধ রাখেত ধরিঞা ॥৫৩॥

सघृत-पायस नव-मृत्कुण्डिका भरिञा ।
तिन पात्रे घनावर्त-दुग्ध राखेत धरिञा ॥५३॥

स-घृत-पायस—मीठे चावल घी से मिले; **नव-मृत्-कुण्डिका**—नये माटी के बर्तन; **भरिञा**—भरकर; **तिन पात्रे**—तीन पात्रों में; **घन-आवर्त-दुग्ध**—अच्छी तरह गाढ़ा उबला दूध; **राखेत**—रखे थे; **धरिञा**—स्थिर करके।

अनुवाद

सभी तरकारियों के चारों ओर घी से मिश्रित खीर रखी थी। इसे नये मिट्टी के बर्तनों में रखा गया था। अच्छी तरह से गाढ़े उबले दूध से भरे मिट्टी के बर्तन तीनों स्थानों पर रखे गये थे।

দুগ্ধ-চিড়া-কলা আর দুগ্ধ-লক্লকী ।
যতেক করিল' তাহা কহিতে না শকি ॥৫৪॥

दुग्ध-चिड़ा-कला आर दुग्ध-लक्लकी ।
यतेक करिल' ताहा कहिते ना शकि ॥५४॥

दुग्ध-चिड़ा—दूध से बनाया चिवड़ा; **कला**—केले के साथ मिलाया हुआ; **आर**—और; **दुग्ध-लक्लकी**—दूध में उबाला हुआ लौ नामक एक प्रकार का सीताफल; **यतेक**—वह सब; **करिल'**—तैयार किया गया; **ताहा**—वह; **कहिते**—वर्णन करने के लिए; **ना**—नहीं; **शकि**—सक्षम हूँ।

अनुवाद

अन्य व्यंजनों के अतिरिक्त दूध में बना तथा केले से मिला चिवड़ा तथा दूध में पकाया सफेद सीताफल था। वहाँ पर उपस्थित सभी व्यंजनों का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

দুই পাশে ধরিল সব মৃৎকুণ্ডিকা ভরি' ।
চাঁপাকলা-দধি-সন্দেশ কহিতে না পারি ॥৫৫॥

दुइ पाशे धरिल सब मृत्कुण्डिका भरि' ।
चाँपाकला-दधि-सन्देश कहिते ना पारि ॥५५॥

दुइ पाशे—दोनों ओर; **धरिल**—रखे; **सब**—सब; **मृत्-कुण्डिका**—मिट्टी के पात्र; **भरि'**—भरकर; **चाँपा-कला**—चाँपाकला नामक एक प्रकार का केला; **दधि-सन्देश**—दही और सन्देश से मिला हुआ; **कहिते**—कहने के लिए; **ना**—नहीं; **पारि**—मैं सक्षम हूँ।

अनुवाद

दो स्थानों पर दही, सन्देश (दही से बनी एक मिठाई) तथा केले से बना एक अन्य व्यंजन मिट्टी के पात्रों में भरकर रखा हुआ था। मैं उन सबका वर्णन कर पाने में असमर्थ हूँ।

অন্ন-ব্যঞ্জন-উপরি দিল তুলসী-মঞ্জরী ।
তিন জল-পাত্রে সুবাসিত জল ভরি' ॥৫৬॥

अन्न-व्यञ्जन-उपरि दिल तुलसी-मञ्जरी ।
तिन जल-पात्रे सुवासित जल भरि' ॥५६॥

अन्न-व्यञ्जन-उपरि—उबले चावल और सब्जियों के ऊपर; **दिल**—रखा; **तुलसी-मञ्जरी**—तुलसी की मंजरी; **तिन**—तीन; **जल-पात्रे**—जल पात्र; **सु-वासित**—सुगन्धित; **जल**—जल; **भरि'**—भरकर।

अनुवाद

पके चावल एवं सारी तरकारियों के ढेर के ऊपर तुलसी की मंजरियाँ थीं। सुगन्धित गुलाब-जल से भरे पात्र भी रखे गये थे।

তিন শুভ্র-পীঠ, তার উপরি বসন ।
এই-রূপে সাক্ষাৎকৃষ্ণে করাইল ভোজন ॥৫৭॥

तिन शुभ्र-पीठ, तार उपरि वसन ।
एइ-रूपे साक्षात्कृष्णे कराइल भोजन ॥५७॥

तिन—तीन; **शुभ्र-पीठ**—सफेद आसन; **तार**—उनके; **उपरि**—ऊपर; **वसन**—नर्म कपड़ा; **एइ-रूपे**—इस प्रकार; **साक्षात्**—साक्षात्; **कृष्णे**—कृष्ण को; **कराइल**—करवाया; **भोजन**—भोजन।

अनुवाद

तीनों आसनों पर मुलायम कपड़े बिछे थे। इस तरह भगवान् कृष्ण

को सारी भोज्य सामग्री अर्पित की गई और उन्होंने इसे बड़े ही मन से ग्रहण किया।

আরতির কালে দুই প্রভু বোলাইল ।
প্রভু-সঙ্গে সবে আসি' আরতি দেখিল ॥৫৮॥

आरतिर काले दुइ प्रभु बोलाइल ।
प्रभु-सङ्गे सबे आसि' आरति देखिल ॥५८॥

आरतिर काले—आरती के समय; **दुइ प्रभु**—दोनों भगवान् नित्यानन्द प्रभु और श्री चैतन्य महाप्रभु; **बोलाइल**—उन्होंने बुलाया; **प्रभु-सङ्गे**—प्रभुओं के संग; **सबे**—अन्य सभी लोगों ने; **आसि'**—वहाँ आकर; **आरति**—आरती; **देखिल**—देखी।

अनुवाद

भोग अर्पित करने के बाद भोग-आरती सम्पन्न करने की प्रथा है। अद्वैत प्रभु ने दोनों भाइयों—चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु को आरती देखने के लिए बुलाया। दोनों प्रभु तथा वहाँ उपस्थित सारे लोग आरती समारोह देखने गये।

আরতি করিয়া কৃষ্ণে করা'ল শয়ন ।
আচার্য আসি' প্রভুরে তবে কৈলা নিবেদন ॥৫৯॥

आरति करिया कृष्णे करा'ल शयन ।
आचार्य्य आसि' प्रभुरे तबे कैला निवेदन ॥५९॥

आरति करिया—आरती समाप्त करने के बाद; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण को; **करा'ल**—करवाया; **शयन**—शयन; **आचार्य्य**—अद्वैत आचार्य; **आसि'**—आकर; **प्रभुरे**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **तबे**—तब; **कैला**—किया; **निवेदन**—निवेदन।

अनुवाद

मन्दिर में अर्चाविग्रहों की आरती हो चुकने के बाद कृष्ण को शयन कराया गया। तब अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु से कुछ निवेदन करने के लिए आगे आये।

গৃহের ভিতরে প্রভু করুন গমন ।
দুই ভাই আইলা তবে করিতে ভোজন ॥৬০॥

गृहेर भितरे प्रभु करुन गमन ।
दुइ भाइ आइला तबे करिते भोजन ॥ ६० ॥

गृहेर भितरे—घर के भीतर; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **करुन**—कृपया करो; **गमन**—प्रवेश; **दुइ भाइ**—दोनों भाई, चैतन्य महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु; **आइला**—आये; **तबे**—तब; **करिते भोजन**—प्रसाद ग्रहण करने के लिए।

अनुवाद

श्री अद्वैत प्रभु ने कहा, "हे प्रभु, कृपया इस कमरे में चलें।" तब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु दोनों भाई प्रसाद ग्रहण करने के लिए आगे आये।

মুকুন্দ, হরিদাস,—দুই প্রভু বোলাইল ।
যোড়-হাতে দুই-জন কহিতে লাগিল ॥৬১॥

मुकुन्द, हरिदास,—दुइ प्रभु बोलाइल ।
य्योड़-हाते दुइ-जन कहिते लागिल ॥ ६१ ॥

मुकुन्द—मुकुन्द; **हरिदास**—हरिदास; **दुइ प्रभु**—दोनों प्रभुओं ने; **बोलाइल**—बुलाया; **य्योड़-हाते**—हाथ जोड़कर; **दुइ-जन**—दोनों व्यक्ति; **कहिते लागिल**—कहने लगे।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु प्रसाद लेने गये, तो उन्होंने मुकुन्द तथा हरिदास को अपने साथ चलने के लिए बुलाया। किन्तु मुकुन्द तथा हरिदास दोनों ने हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा।

মুকুন্দ কহে—মোর কিছু কৃত্য নাহি সরে ।
পাছে মুঞি প্রসাদ পামু, তুমি যাহ ঘরে ॥৬২॥

मुकुन्द कहे—मोर किछु कृत्य नाहि सरे ।
पाछे मुञि प्रसाद पामु, तुमि य्याह घरे ॥ ६२ ॥

मुकुन्द कहे—मुकुन्द ने कहा; **मोर**—मुझे; **किछु**—कुछ; **कृत्य**—करना है; **नाहि सरे**—

जो अभी समाप्त नहीं हुआ है; **पाछे**—बाद में; **मुञि**—मैं; **प्रसाद**—प्रसाद; **पामु**—लूंगा; **तुमि ग्राह घरे**—आप दोनों कृपया कमरे के भीतर जाएँ।

अनुवाद

बुलाये जाने पर मुकुन्द ने निवेदन किया, "हे प्रभु, मुझे कुछ काम करना शेष है। मैं बाद में प्रसाद ग्रहण करूँगा, अतएव आप दोनों प्रभु अब कमरे के भीतर जाएँ।"

হরিদাস কহে—মুঞি পাপিষ্ঠ অধম ।
বাহিরে এক মুষ্টি পাছে করিমু ভোজন ॥৬৩॥

हरिदास कहे—मुञि पापिष्ठ अधम ।
बाहिरे एक मुष्टि पाछे करिमु भोजन ॥ ६३ ॥

हरिदास कहे—हरिदास ने कहा; **मुञि**—मैं; **पापिष्ठ**—पापी; **अधम**—अधम, नीच; **बाहिरे**—बाहर; **एक**—एक; **मुष्टि**—मुट्ठी भर; **पाछे**—बाद में; **करिमु**—मैं करूँगा; **भोजन**—भोजन।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, "मैं अत्यन्त पापी और अधम हूँ। मैं बाहर ही प्रतीक्षा करते हुए बाद में एक मुट्ठी प्रसाद खाऊँगा।"

तात्पर्य

यद्यपि हिन्दू तथा मुसलमान अत्यन्त सौहार्द्रपूर्ण ढंग से हिल-मिलकर रहते थे, फिर भी उनमें कुछ अन्तर थे। मुसलमानों को *यवन* अथवा निम्न कुल में उत्पन्न माना जाता था और जब भी उन्हें आमन्त्रित किया जाता था, तो उन्हें घर के बाहर दरवाजे पर ही भोजन परोसा जाता था। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु ने स्वयं हरिदास ठाकुर को अपने साथ प्रसाद ग्रहण करने के लिए बुलाया, किन्तु उन्होंने अत्यन्त विनीत भाव से कहा, "मैं घर के बाहर ही प्रसाद ले लूँगा।" यद्यपि हरिदास ठाकुर उन्नत वैष्णव थे, जिन्हें अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द प्रभु तथा श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वीकार किया था, फिर भी सामाजिक शान्ति भंग न हो इसलिए अपने आपको मुसलमान मानते हुए वे हिन्दू समाज की सीमा के बाहर ही रहे। इसीलिए उन्होंने घर के बाहर प्रसाद

ग्रहण करने की बात की। यद्यपि वे उच्च पद पर थे और अन्य महान् वैष्णवों के समान थे, फिर भी वे अपने आपको *पापिष्ठ* और *अधम* मानते थे। भले ही आध्यात्मिक दृष्टि से कोई वैष्णव कितना ही उन्नत क्यों न हो, ऊपर से वह अत्यन्त दीन एवं विनीत बना रहता है।

দুই প্রভু লঞা আচার্য গেলা ভিতর ঘরে ।
প্রসাদ দেখিয়া প্রভুর আনন্দ অন্তরে ॥৬৪॥

दुइ प्रभु लञा आचार्य्य गेला भितर घरे ।
प्रसाद देखिया प्रभुर आनन्द अन्तरे ॥ ६४॥

दुइ प्रभु—दोनों प्रभु (चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु); **लञा**—के साथ; **आचार्य्य**—अद्वैत आचार्य; **गेला**—गये; **भितर**—भीतर; **घरे**—घर के; **प्रसाद**—प्रसाद; **देखिया**—देखकर; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **आनन्द अन्तरे**—अन्दर से बहुत आनन्दित थे।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य अपने साथ नित्यानन्द प्रभु तथा चैतन्य महाप्रभु को कमरे के भीतर ले गये, जहाँ दोनों प्रभुओं ने प्रसाद की व्यवस्था देखी। विशेषकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यधिक प्रसन्न हुए।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु इसलिए प्रसन्न हुए, क्योंकि उन्होंने देखा कि कृष्ण के लिए नाना प्रकार के व्यंजन किस सुन्दर रीति से प्रस्तुत किये गये हैं। वास्तव में सभी प्रकार का प्रसाद कृष्ण के लिए प्रस्तुत किया जाता है, लोगों के लिए नहीं, किन्तु भक्तगण इस प्रसाद को बड़े ही आनन्द के साथ ग्रहण करते हैं।

ঐছে অন্ন যে কৃষ্ণকে করায় ভোজন ।
জন্মে জন্মে শিরে ধরোঁ তাঁহার চরণ ॥৬৫॥

ऐछे अन्न ये कृष्णके कराय भोजन ।
जन्मे जन्मे शिरे धरों ताँहार चरण ॥ ६५॥

ऐछे—इस प्रकार; **अन्न**—अन्न, भोज्य पदार्थ; **ये**—जो कोई; **कृष्णके**—कृष्ण को; **कराय**—करवाये; **भोजन**—भोजन; **जन्मे जन्मे**—जन्म जन्म; **शिरे**—अपने सिर पर; **धरों**—मैं रखता हूँ; **ताँहार**—उसके; **चरण**—चरणकमल।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण को अर्पित किये जाने वाले भोजन के पकाने की सारी विधियों का अनुमोदन किया। वे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने कहा, "मैं हृदय से कहता हूँ कि जो कोई कृष्ण को इतना अच्छा भोजन अर्पित कर सकता है, उसके चरणकमलों को मैं जन्म-जन्मांतर अपने मस्तक पर धारण करने को प्रस्तुत हूँ।"

প্রভু জানে তিন ভোগ—কৃষ্ণের নৈবেদ্য ।
আচার্যের মনঃ-কথা নহে প্রভুর বেদ্য ॥৬৬॥

प्रभु जाने तिन भोग—कृष्णेर नैवेद्य ।
आचार्य्येर मनः-कथा नहे प्रभुर वेद्य ॥ ६६ ॥

प्रभु जाने—प्रभु जानते हैं; **तिन भोग**—तीन श्रेणी के भोग; **कृष्णेर नैवेद्य**—भगवान् कृष्ण को भेट; **आचार्य्येर**—अद्वैत आचार्य के; **मनः-कथा**—मन की भावनाएँ; **नहे**—नहीं; **प्रभुर**—महाप्रभु को; **वेद्य**—ज्ञात।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कमरे में प्रविष्ट हुए, तो उन्होंने भोजन के तीन भाग देखे और यह समझा कि ये तीनों कृष्ण के लिए हैं। किन्तु वे अद्वैत आचार्य के मनोभावों को नहीं समझ पाये।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार इनमें से एक भाग जो धातु की थाली में परोसा गया था, वह कृष्ण के लिए था और अन्य दो भाग केले के बड़े बड़े पत्तों पर परोसे गये थे। धातु की थाली का भोग अद्वैत आचार्य ने अपने हाथों से कृष्ण को अर्पित किया। शेष दो भाग जो केले के पत्तों पर थे, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु द्वारा ग्रहण किये जाने थे। यही अद्वैत आचार्य का आशय था, किन्तु उन्होंने यह बात श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाई नहीं। अतएव ज़ब महाप्रभु ने तीन स्थानों पर भोजन परोसा देखा, तो उन्होंने सोचा कि ये तीनों कृष्ण के लिए हैं।

প্রভু বলে—বৈস তিনে করিয়ে ভোজন ।
আচার্য কহে—আমি করিব পরিবেশন ॥ ৬৭ ॥

प्रभु बले—वैस तिने करिये भोजन ।
आचार्य्य कहे—आमि करिब परिवेशन ॥ ६७ ॥

प्रभु बले—चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **वैस**—बैठ जाओ; **तिने**—तीन स्थानों पर; **करिये**—करें; **भोजन**—भोजन; **आचार्य्य कहे**—अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया; **आमि करिब परिवेशन**—मैं वितरण करूँगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "चलो, इन तीनों स्थानों में बैठकर हम प्रसाद ग्रहण करें।" किन्तु अद्वैत आचार्य ने कहा, "मैं प्रसाद का वितरण करूँगा।"

কোন্স্থানে বসিব, আর আন দুই পাত ।
অল্প করি' আনি' তাহে দেহ ব্যঞ্জন ভাত ॥ ৬৮ ॥

कोन् स्थाने वसिब, आर आन दुइ पात ।
अल्प करि' आनि' ताहे देह व्यञ्जन भात ॥ ६८ ॥

कोन् स्थाने वसिब—हम कहाँ बैठे; **आर**—अन्य; **आन**—लाओ; **दुइ पात**—दो पत्र; **अल्प करि'**—थोड़ी मात्रा करके; **आनि'**—लाकर; **ताहे**—उस पर; **देह**—दो; **व्यञ्जन**—व्यंजन, सब्जियाँ; **भात**—भात।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सोचा कि तीनों थालियाँ वितरण करने के लिए हैं, अतएव उन्होंने यह कहते हुए और दो केले के पत्ते माँगे, "हमें थोड़ी तरकारी तथा चावल दें।"

আচার্য কহে—বৈস দোঁহে পিঁড়ির উপরে ।
এত বলি' হাতে ধরি' বসাইল দুঁহারে ॥ ৬৯ ॥

आचार्य्य कहे—वैस दोंहे पिंड़िर उपरे ।
एत बलि' हाते धरि' वसाइल दुँहारे ॥ ६९ ॥

आचार्य कहे—अद्वैत आचार्य ने कहा; **वैस**—बैठ जाइए; **दोंहे**—आप दोनों; **पिंड़िर उपरे**—लकड़ी के तख्तों पर; **एत बलि'**—यह कहकर; **हाते धरि'**—उनके हाथ पकड़कर; **वसाइल दुँहारे**—दोनों प्रभुओं को बैठाया।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "कृपया इन आसनों पर बैठें।" उन्होंने उन दोनों के हाथ पकड़कर उन्हें बैठाया।

প্রভু কহে—সন্ন্যাসীর ভক্ষ্য নহে উপকরণ ।
ইহা খাইলে কৈছে হয় ইন্দ্রিয় বারণ ॥৭০॥

प्रभु कहे—सन्न्यासीर भक्ष्य नहे उपकरण ।
इहा खाइले कैछे हय इन्द्रिय वारण ॥ ७० ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **सन्न्यासीर**—संन्यासी से; **भक्ष्य**—खाना जाना; **नहे**—यह नहीं है; **उपकरण**—विभिन्न पकवान; **इहा**—यह; **खाइले**—यदि खाये जाएँ; **कैछे**—कैसे; **हय**—होगा; **इन्द्रिय**—इन्द्रिय; **वारण**—नियंत्रण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "संन्यासी के लिए इतनी तरह के व्यंजन ग्रहण करना उचित नहीं है। यदि वह ऐसा करता है, तो फिर वह अपनी इन्द्रियों को किस तरह वश में रख सकता है?"

तात्पर्य

उपकरण शब्द चावल के साथ खाये जाने वाले दाल, तरकारी तथा नाना प्रकार के भोज्य पदार्थों को सूचित करने वाला है। किन्तु संन्यासी के लिए ऐसे स्वादिष्ट व्यंजन खाना उचित नहीं है। यदि वह ऐसा करता है, तो वह अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकता। चैतन्य महाप्रभु संन्यासियों को स्वादिष्ट व्यंजन खाने के लिए प्रोत्साहन नहीं देते थे, क्योंकि सारा वैष्णव सम्प्रदाय *वैराग्य-विद्या* अर्थात् यथासम्भव वैराग्य-भाव का अनुशीलन करने वाला है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ दास गोस्वामी को भी परामर्श दिया था कि वे न तो अत्यन्त स्वादिष्ट व्यंजन खायें, न अच्छे वस्त्र पहनें, न भौतिक विषयों की चर्चा करें। संन्यासियों के लिए ये बातें वर्जित हैं। भक्त कभी भी ऐसी वस्तु

ग्रहण नहीं करता, जो पहले कृष्ण को अर्पित न हुई हो। कृष्ण को जो भी अच्छे व्यंजन अर्पित किये जाते हैं, वे गृहस्थों को दे दिये जाते हैं। वैसे कृष्ण को अनेक उत्तम वस्तुएँ अर्पित की जाती हैं—जैसे हार, पलंग के बिछौने, उत्कृष्ट आभूषण, उत्तम भोजन, यहाँ तक कि अच्छी तरह से तैयार किये पान-सुपारी, किन्तु विनीत वैष्णव अपने शरीर को भौतिक तथा घृणित मानकर ऐसी वस्तुएँ स्वयं ग्रहण नहीं करता। वह सोचता है कि ऐसी वस्तुएँ ग्रहण करने से वह भगवान् के चरणकमलों के प्रति अपराध करेगा। जो *सहजिया* हैं, वे यह नहीं समझ सकेंगे कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य से दो अलग से केले के पत्ते लाने के लिए और एक में अपने लिए थोड़ा-सा प्रसाद देने के लिए कहा था, तो इसमें उनका क्या उद्देश्य था।

আচার্য কহে—ছাড় তুমি আপনার চুরি ।
আমি সব জানি তোমার সন্ন্যাসের ভারি-ভুরি ॥৭১॥

आचार्य कहे—छाड़ तुमि आपनार चुरि ।
आमि सब जानि तोमार सन्न्यासेर भारि-भुरि ॥ ७१ ॥

आचार्य कहे—अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया; **छाड़**—छोड़ दीजिये; **तुमि**—आप; **आपनार**—अपना; **चुरि**—छल; **आमि**—मैं; **सब**—सब; **जानि**—जानता हूँ; **तोमार**—आपके; **सन्न्यासेर**—संन्यास ग्रहण करने का; **भारि-भुरि**—गुप्त अर्थ।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पहले से परोसे हुए उस भोजन को ग्रहण नहीं किया, तो अद्वैत आचार्य ने कहा "कृपया अपना छल त्यागिये। मैं जानता हूँ कि आप कौन हैं और मैं आपके द्वारा संन्यास लेने के रहस्य को भी जानता हूँ।"

ভোজন করহ, ছাড় বচন-চাতুরী ।
প্রভু কহে—এত অন্ন খাইতে না পারি ॥৭২॥

भोजन करह, छाड़ वचन-चातुरी ।
प्रभु कहे—एत अन्न खाइते ना पारि ॥ ७२ ॥

भोजन करह—कृपया यह प्रसाद ग्रहण कीजिये; **छाड़**—छोड़ दीजिये; **वचन-चातुरी**—शब्द चातुरी; **प्रभु कहे**—महाप्रभु ने कहा; **एत**—इतना; **अन्न**—भोजन; **खाइते**—खाने के लिए; **ना पारि**—मैं सक्षम नहीं हूँ।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे वाक्-चातुरी त्यागकर भोजन करें। इस पर महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं सचमुच इतना भोजन नहीं खा सकता।"

আচার্য বলে—অকপটে করহ আহার ।
যদি খাইতে না পার পাতে রহিবেক আর ॥৭৩॥

आचार्य्य बले—अकपटे करह आहार ।
य़दि खाइते ना पार पाते रहिबेक आर ॥ ७३ ॥

आचार्य्य बले—अद्वैत आचार्य ने कहा; **अकपटे**—बहाने के बिना; **करह**—कृपया करें; **आहार**—भोजन; **य़दि**—यदि; **खाइते**—खाने में; **ना पार**—आप सक्षम नहीं हैं; **पाते**—पत्र पर; **रहिबेक आर**—जो बचे, उसे रहने दें।

अनुवाद

तब अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु से अनुरोध किया कि वे बहाना छोड़कर प्रसाद ग्रहण करें। यदि वे पूरा नहीं खा सकते, तो शेष भाग थाली पर पड़ा रहने दें।

প্রভু বলে—এত অন্ন নারিব খাইতে ।
সন্ন্যাসীর ধর্ম নহে উচ্ছিষ্ট রাখিতে ॥৭৪॥

प्रभु बले—एत अन्न नारिब खाइते ।
सन्न्यासीर धर्म नहे उच्छिष्ट राखिते ॥ ७४ ॥

प्रभु बले—महाप्रभु ने कहा; **एत**—इतना; **अन्न**—अन्न, भोजन; **नारिब**—मैं नहीं (खा) सकूंगा; **खाइते**—खा; **सन्न्यासीर**—संन्यासी; **धर्म नहे**—का धर्म नहीं; **उच्छिष्ट**—जूठन; **राखिते**—बाकी छोड़ना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं इतना भोजन नहीं खा सकूँगा और यह संन्यासी का धर्म नहीं है कि वह जूठन छोड़े।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (११.१८.१९) के अनुसार :

बहिर्जलाशयम् गत्वा ततोपस्पृश्य वाग्यतः।
विभज्य पावितं शेषं भुञ्जीताशेषं आहृतम्॥

"संन्यासी को गृहस्थ के घर से जो भी खाद्य पदार्थ मिले, वह उसे लेकर किसी झील या नदी के किनारे जाये और विष्णु, ब्रह्मा तथा सूर्य को (तीन भाग) अर्पित करके पूरा प्रसाद ग्रहण करे, उसका तनिक भी भाग दूसरों के खाने के लिए न छोड़े।"

আচার্য বলে—নীলাচলে খাও চৌয়ান্ন-বার ।
এক-বারে অন্ন খাও শত শত ভার ॥৭৫॥

आचार्य्य बले—नीलाचले खाओ चौयान्न-बार ।
एक-बारे अन्न खाओ शत शत भार ॥ ७५ ॥

आचार्य्य बले—अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया; **नीलाचले**—जगन्नाथ पुरी में; **खाओ**—आप खाते हो; **चौयान्न-बार**—चौवन बार; **एक-बारे**—एक बार; **अन्न**—भोजन; **खाओ**—आप खाओ; **शत शत भार**—सैंकड़ों पात्र भरकर।

अनुवाद

इस सन्दर्भ में श्री अद्वैत आचार्य ने चैतन्य महाप्रभु द्वारा जगन्नाथ पुरी में भोजन करने का उदाहरण दिया। भगवान् जगन्नाथ और श्री चैतन्य महाप्रभु अभिन्न हैं। अद्वैत आचार्य ने बतलाया कि जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिदिन चौवन बार खाते हैं और हर बार वे भोग के सैकड़ों पात्र ग्रहण करते हैं।

তিন জনার ভক্ষ্য-পিণ্ড—তোমার এক গ্রাস ।
তার লেখায় এই অন্ন নহে পঞ্চ-গ্রাস ॥৭৬॥

तिन जनार भक्ष्य-पिण्ड—तोमार एक ग्रास ।
तार लेखाय एइ अन्न नहे पञ्च-ग्रास ॥ ७६ ॥

तिन जनार—तीन व्यक्तियों का; **भक्ष्य-पिण्ड**—भक्ष्य पदार्थ; **तोमार**—आपका; **एक**

ग्रास—एक ग्रास; **तार**—उसको; **लेखाय**—अनुपात में; **एइ अन्न**—यह भोजन; **नहे**—नहीं है; **पञ्च-ग्रास**—पाँच ग्रास।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने कहा, "तीन जन जितना खाते हैं वह आपके एक ग्रास के बराबर भी नहीं है। इस गणना के अनुसार ये खाद्य पदार्थ आपके पाँच ग्रास भी नहीं होंगे।"

মোর ভাগ্যে, মোর ঘরে, তোমার আগমন ।
ছাড়হ চাতুরী, প্রভু, করহ ভোজন ॥৭৭॥

मोर भाग्ये, मोर घरे, तोमार आगमन ।
छाड़ह चातुरी, प्रभु, करह भोजन ॥ ७७ ॥

मोर भाग्ये—मेरे भाग्य से; **मोर घरे**—मेरे घर पर; **तोमार**—आपका; **आगमन**—आगमन; **छाड़ह**—कृपया छोड़ दो; **चातुरी**—यह वाक् चातुरी; **प्रभु**—मेरे प्रभु; **करह**—बस करो; **भोजन**—भोजन।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने आगे कहा, "यह मेरा परम सौभाग्य है कि आप मेरे घर पधारे हैं। कृपया बातें मत बनाइये। बातें छोड़कर भोजन करना प्रारम्भ कीजिये।"

এত বলি' জল দিল দুই গোসাঞির হাতে ।
হাসিয়া লাগিলা দুঁহে ভোজন করিতে ॥৭৮॥

एत बलि' जल दिल दुइ गोसाञिर हाते ।
हासिया लागिला दुँहे भोजन करिते ॥ ७८ ॥

एत बलि'—यह कहकर; **जल दिल**—जल दिया; **दुइ गोसाञिर**—चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के; **हाते**—हाथों में; **हासिया**—हँसते हुए; **लागिला**—लगे; **दुँहे**—वे दोनों; **भोजन करिते**—भोजन करने।

अनुवाद

यह कहकर अद्वैत आचार्य ने दोनों प्रभुओं को हाथ धोने के लिए जल दिया। तत्पश्चात् दोनों प्रभु बैठ गये और हँसते हुए प्रसाद ग्रहण करने लगे।

নিত্যানন্দ কহে—কৈলুঁ তিন উপবাস ।
আজি পারণা করিতে ছিল বড় আশ ॥৭৯॥

नित्यानन्द कहे—कैलुँ तिन उपवास ।
आजि पारणा करिते छिल बड़ आश ॥७९॥

नित्यानन्द कहे—नित्यानन्द प्रभु ने कहा; **कैलुँ**—मैंने किये हैं; **तिन**—तीन; **उपवास**—उपवास (के दिन); **आजि**—; **पारणा**—उपवास तोड़कर; **करिते**—करने की; **छिल**—थी; **बड़**—बहुत; **आश**—आशा।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "मैं लगातार तीन दिनों से उपवास करता रहा हूँ। मुझे आशा थी कि आज मेरा उपवास टूटेगा।"

আজি উপবাস হৈল আচার্য-নিমন্ত্রণে ।
অর্দ্ধ-পেট না ভরিবে এই গ্রাসেক অন্নে ॥৮০॥

आजि उपवास हैल आचार्य्र-निमन्त्रणे ।
अर्ध-पेट ना भरिबे एइ ग्रासेक अन्ने ॥८०॥

आजि—आज भी; **उपवास**—उपवास; **हैल**—हो गया; **आचार्य्र-निमन्त्रणे**—अद्वैत आचार्य के निमन्त्रण से; **अर्ध-पेट**—आधे पेट; **ना**—नहीं; **भरिबे**—भरेगा; **एइ**—यह; **ग्रासेक अन्ने**—भोजन के एक ग्रास।

अनुवाद

जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु सोच रहे थे कि भोजन की मात्रा अत्यधिक है, वहीं नित्यानन्द प्रभु ने सोचा कि वह तो एक ग्रास भी नहीं है। वे तीन दिन से उपवास कर रहे थे और उन्हें पूरी आशा थी कि आज वे अपना उपवास भंग करेंगे। उन्होंने कहा, "यद्यपि अद्वैत आचार्य ने मुझे आज खाने के लिए बुलाया है, किन्तु आज भी मेरा उपवास है। इतने थोड़े भोजन से तो मेरा आधा पेट भी नहीं भरेगा।"

আচার্য কহে—তুমি হও তৈর্থিক সন্ন্যাসী ।
কভু ফল-মূল খাও, কভু উপবাসী ॥৮১॥

आचार्य्य कहे—तुमि हओ तैर्थिक सन्न्यासी ।
कभु फल-मूल खाओ, कभु उपवासी ॥ ८१ ॥

आचार्य्य कहे—अद्वैत आचार्य ने नित्यानन्द प्रभु को उत्तर दिया; **तुमि**—आप; **हओ**—हो; **तैर्थिक सन्न्यासी**—तीर्थ-भ्रमण करने वाले संन्यासी; **कभु**—कभी-कभी; **फल-मूल**—फल मूल; **खाओ**—खाते हो; **कभु उपवासी**—कभी-कभी उपवास करते हो।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया, "आप तो तीर्थों की यात्रा करने वाले संन्यासी ठहरे। कभी आप फल खाते हैं, तो कभी कन्दमूल और कभी केवल उपवास करते हैं।

দরিদ্র-ব্রাহ্মণ-ঘরে যে পাইলা মুষ্ট্যেক অন্ন ।
ইহাতে সন্তুষ্ট হও, ছাড় লোভ-মন ॥ ৮২॥

दरिद्र-ब्राह्मण-घरे ग्रे पाइला मुष्ट्येक अन्न ।
इहाते सन्तुष्ट हओ, छाड़ लोभ-मन ॥ ८२ ॥

दरिद्र-ब्राह्मण—निर्धन ब्राह्मण; **घरे**—घर में; **ग्रे**—जो कुछ; **पाइला**—मिला है; **मुष्टि-एक**—एक मुट्ठी; **अन्न**—अन्न; **इहाते**—इसमें; **सन्तुष्ट हओ**—सन्तुष्ट हो जाओ; **छाड़**—छोड़ दो; **लोभ-मन**—लोभ भावना।

अनुवाद

"मैं तो दरिद्र ब्राह्मण हूँ और आप मेरे घर पधारे हैं। आपको जो थोड़ा-बहुत भोजन मिला है, इतने से सन्तुष्ट हों और अपनी लोभी मनोवृत्ति को छोड़ दें।"

নিত্যানন্দ বলে—যবে কৈলে নিমন্ত্রণ ।
তত দিতে চাহ, যত করিয়ে ভোজন ॥ ৮৩॥

नित्यानन्द बले—ग्रबे कैले निमन्त्रण ।
तत दिते चाह, ग्रत करिये भोजन ॥ ८३ ॥

नित्यानन्द बले—प्रभु नित्यानन्द ने कहा; **ग्रबे**—कब; **कैले**—आपने किया है; **निमन्त्रण**—निमन्त्रण; **तत**—इतना; **दिते चाह**—आपको देना चाहिए; **ग्रत**—इतना; **करिये भोजन**—मैं खा सकूँ।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया, "मैं जो भी होऊँ, आपने मुझे बुलाया है, अतएव आपको चाहिए कि मैं जितना खाना चाहूँ उतना दो।"

শুনি' নিত্যানন্দের কথা ঠাকুর অদ্বৈত ।
কহেন তাঁহারে কিছু পাইয়া পিরীত ॥ ৮৪॥

शुनि' नित्यानन्देर कथा ठाकुर अद्वैत ।
कहेन ताँहारे किछु पाइया पिरीत ॥ ८४॥

शुनि'—सुनकर; **नित्यानन्देर**—नित्यानन्द प्रभु का; **कथा**—कथन; **ठाकुर**—ठाकुर; **अद्वैत**—अद्वैत आचार्य ने; **कहेन**—कहा; **ताँहारे**—नित्यानन्द प्रभु को; **किछु**—कुछ; **पाइया**—अवसर पाकर; **पिरीत**—प्रसन्न करने वाले शब्द।

अनुवाद

ठाकुर अद्वैत आचार्य को नित्यानन्द की विनोद-पूर्ण बातें सुनने के बाद अवसर मिला कि वे परिहास करें, अत: वे इस प्रकार बोले।

ভ্রষ্ট অবধূত তুমি, উদর ভরিতে ।
সন্ন্যাস লইয়াছ, বুঝি, ব্রাহ্মণ দণ্ডিতে ॥ ৮৫॥

भ्रष्ट अवधूत तुमि, उदर भरिते ।
सन्न्यास लइयाछ, बुझि, ब्राह्मण दण्डिते ॥ ८५॥

भ्रष्ट अवधूत—भ्रष्ट परमहंस; **तुमि**—आप; **उदर भरिते**—अपना पेट भरने हेतु; **सन्न्यास लइयाछ**—आपने संन्यास लिया है; **बुझि**—मैं समझता हूँ; **ब्राह्मण दण्डिते**—ब्राह्मण को कष्ट देने के लिए।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "आप भ्रष्ट परमहंस हो और आपने मात्र पेट भरने के लिए संन्यास ग्रहण किया है। मैं समझ गया हूँ कि आपका पेशा है ब्राह्मणों को कष्ट पहुँचाना।"

तात्पर्य

एक स्मार्त ब्राह्मण तथा एक वैष्णव गोस्वामी में सदैव मतभेद रहता है। यहाँ तक कि फलित ज्योतिष तथा नक्षत्र गणनाओं तक में स्मार्त मत तथा

वैष्णव गोस्वामी मत पाये जाते हैं। नित्यानन्द प्रभु को *भ्रष्ट अवधूत* (भ्रष्ट परमहंस) कहकर एक तरह से अद्वैत आचार्य प्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को परमहंस के रूप में स्वीकार किया। दूसरे शब्दों में, नित्यानन्द प्रभु को स्मार्त ब्राह्मणों के नियमों से कोई सरोकार न था। इस तरह उनकी भर्त्सना करने के बहाने अद्वैत आचार्य वास्तव में उनकी प्रशंसा कर रहे थे। *अवधूत* अर्थात् *परमहंस* अवस्था सर्वोच्च अवस्था है। इस अवस्था में कोई इन्द्रियतृप्ति के स्तर पर *विषयी* प्रतीत हो सकता है, किन्तु वास्तव में उसे विषयों से कोई प्रयोजन नहीं होता। इस अवस्था में वह कभी संन्यासी का वेश तथा लक्षण धारण करता है और कभी नहीं भी। कभी-कभी वह गृहस्थ की तरह वस्त्र धारण करता है। किन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि यह अद्वैत आचार्य और नित्यानन्द प्रभु के बीच परिहास चल रहा था। इन्हें अपमान नहीं समझना चाहिए।

खड़दह में कभी-कभी लोग नित्यानन्द प्रभु को *शाक्त सम्प्रदाय* से सम्बन्धित मान बैठते थे, जिनका दर्शन है *अन्तः शाक्तः बहिः शैवः सभायां वैष्णवो मतः।* शाक्त सम्प्रदाय के अनुसार *कौलावधूत* कहलाने वाला व्यक्ति बाहर से शिवजी का महान् भक्त प्रतीत होता है, किन्तु सोचता है भौतिक दृष्टि से। जब ऐसा व्यक्ति वैष्णवों की सभा में होता है, तो वह वैष्णव प्रतीत होता है। वास्तव में नित्यानन्द प्रभु इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित नहीं थे। वे सदैव वैदिक संन्यासी के एक ब्रह्मचारी सेवक थे। वास्तव में वे *परमहंस* थे। कभी-कभी उन्हें लक्ष्मीपति तीर्थ के शिष्य माने जाते हैं। ऐसा मान लेने पर वे मध्व-सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। वे बंगाल के *तान्त्रिक सम्प्रदाय* से सम्बन्धित नहीं थे।

তুমি খেতে পার দশ-বিশ মানের অন্ন ।
আমি তাহা কাঁহা পাব দরিদ্র ব্রাহ্মণ ॥৮৬॥

तुमि खेते पार दश-विश मानेर अन्न ।
आमि ताहा काँहा पाब दरिद्र ब्राह्मण ॥ ८६ ॥

तुमि—आप; **खेते**—खा; **पार**—सकते हो; **दश-विश**—दस बीस; **मानेर**—मन; **अन्न**—भात; **आमि**—मैं; **ताहा**—वह; **काँहा**—कहाँ; **पाब**—पाऊँगा; **दरिद्र**—दरिद्र; **ब्राह्मण**—ब्राह्मण।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु पर लांछन लगाते हुए अद्वैत आचार्य ने कहा, "आप तो दस-बीस मन चावल खा सकते हो। मैं तो ठहरा निर्धन ब्राह्मण। भला मैं इतना चावल कैसे ला सकता हूँ?

तात्पर्य

एक मन लगभग चार किलोग्राम के बराबर होता है।

যে পাঞাছ মুষ্ট্যেক অন্ন, তাহা খাঞা উঠ ।
পাগলামি না করিহ, না ছড়াইও ঝুঠ ॥৮৭॥

ये पाञाछ मुष्ट्येक अन्न, ताहा खाञा उठ ।
पागलामि ना करिह, ना छड़ाइओ झुठ ॥ ८७॥

ये पाञाछ—आपको जो कुछ मिला है; **मुष्टि-एक**—एक मुट्ठी; **अन्न**—अन्न (भात); **ताहा**—वह; **खाञा**—खाओ; **उठ**—कृपया उठो; **पागलामि**—पागलपन; **ना**—नहीं; **करिह**—करो; **ना**—नहीं; **छड़ाइओ**—बिखेरो; **झुठ**—बचा हुआ भोजन।

अनुवाद

"जो कुछ आपको दिया है, भले ही वह मुट्ठी-भर चावल क्यों न हो, कृपया उसे खाओ और उठ जाओ। अपना पागलपन मत दिखलाओ और जूठन इधर-उधर मत बिखराओ।"

এই মত হাস্য-রসে করেন ভোজন ।
অর্ধ-অর্ধ খাঞা প্রভু ছাড়েন ব্যঞ্জন ॥৮৮॥

एइ मत हास्य-रसे करेन भोजन ।
अर्ध-अर्ध खाञा प्रभु छाड़ेन व्यञ्जन ॥ ८८॥

एइ मत—इस प्रकार; **हास्य-रसे**—हास्य में; **करेन**—करते हैं; **भोजन**—भोजन; **अर्ध-अर्ध**—आधा आधा; **खाञा**—खाने के बाद; **प्रभु**—महाप्रभु; **छाड़ेन**—छोड़ दिया; **व्यञ्जन**—सभी व्यंजन।

अनुवाद

इस तरह नित्यानन्द प्रभु तथा चैतन्य महाप्रभु ने भोजन ग्रहण किया और अद्वैत आचार्य से परिहास किया। श्री चैतन्य महाप्रभु को जितनी

तरकारियाँ परोसी गयी थीं, उन्होंने उनमें से हर एक को आधा-आधा खाकर छोड़ दिया।

সেই ব্যঞ্জন আচার্য পুনঃ করেন পূরণ ।
এই মত পুনঃ পুনঃ পরিবেশে ব্যঞ্জন ॥৮৯॥

सेइ व्यञ्जन आचार्य्य पुनः करेन पूरण ।
एइ मत पुनः पुनः परिवेशे व्यञ्जन ॥ ८९ ॥

सेइ व्यञ्जन—वही आधे खाये व्यंजन; **आचार्य्य**—अद्वैत आचार्य; **पुनः**—पुनः; **करेन**—करते हैं; **पूरण**—पूरा; **एइ मत**—इस तरह; **पुनः पुनः**—बार बार; **परिवेशे**—बाँटते; **व्यञ्जन**—व्यंजन।

अनुवाद

जब पात्र की आधी तरकारी समाप्त हो जाती, तो अद्वैत आचार्य फिर से उसे पूरा भर देते। इस तरह ज्योंही महाप्रभु आधा व्यंजन समाप्त करते कि अद्वैत आचार्य पुनः पुनः उसे पूरा भर देते।

দোনা ব্যঞ্জনে ভরি' করেন প্রার্থন ।
প্রভু বলেন——আর কত করিব ভোজন ॥৯০॥

दोना व्यञ्जने भरि' करेन प्रार्थन ।
प्रभु बलेन——आर कत करिब भोजन ॥ ९० ॥

दोना—दोना (पात्र); **व्यञ्जने**—व्यंजनों से; **भरि'**—भरकर; **करेन**—करते; **प्रार्थन**—प्रार्थना; **प्रभु बलेन**—चैतन्य महाप्रभु कहते हैं; **आर**—और ; **कत**—कितना; **करिब**—मैं कर सकता हूँ; **भोजन**—भोजन।

अनुवाद

दोने को तरकारी से भरकर अद्वैत आचार्य ने उनसे प्रार्थना की कि वे और खायें। किन्तु चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं और कितना खा सकता हूँ?"

আচার্য কহে——যে দিয়াছি, তাহা না ছাড়িবা ।
এখন যে দিয়ে, তার অর্ধেক খাইবা ॥৯১॥

आचार्य्य कहे—य्रे दियाछि, ताहा ना छाड़िबा ।
एखन य्रे दिये, तार अर्धेक खाइबा ॥ ९१ ॥

आचार्य्य कहे—अद्वैत आचार्य ने कहा; **य्रे दियाछि**—मैंने जो कुछ दिया है; **ताहा ना छाड़िबा**—उसे मत छोड़िये; **एखन**—अब; **य्रे**—जो कुछ; **दिये**—मैं दे रहा हूँ; **तार अर्धेक**—उसका आधा; **खाइबा**—आप खाओगे।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "कृपा करके मेरे द्वारा परोसे हुए अन्न को न छोड़ें। अब मैं जो भी दे रहा हूँ, उसका आप आधा खाकर छोड़ सकते हैं।"

নানা যত্ন-দৈন্যে প্রভুরে করাইল ভোজন ।
আচার্যের ইচ্ছা প্রভু করিল পূরণ ॥৯২॥

नाना य्रत्न-दैन्ये प्रभुरे कराइल भोजन ।
आचार्य्येर इच्छा प्रभु करिल पूरण ॥ ९२ ॥

नाना य्रत्न-दैन्ये—इस प्रकार नाना प्रयासों से और नम्रता से; **प्रभुरे**—चैतन्य महाप्रभु को; **कराइल**—करवाया; **भोजन**—भोजन; **आचार्य्येर इच्छा**—अद्वैत आचार्य की इच्छा; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु ने; **करिल**—की; **पूरण**—पूरी।

अनुवाद

इस तरह विविध प्रकार से अनुनय-विनय करके अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु एवं नित्यानन्द प्रभु को भोजन कराया। इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य की सारी इच्छाएँ पूरी कीं।

নিত্যানন্দ কহে—আমার পেট না ভরিল ।
লঞা যাহ, তোর অন্ন কিছু না খাইল ॥৯৩॥

नित्यानन्द कहे—आमार पेट ना भरिल ।
लञा य्राह, तोर अन्न किछु ना खाइल ॥ ९३ ॥

नित्यानन्द कहे—नित्यानन्द प्रभु ने कहा; **आमार**—मेरा; **पेट**—पेट; **ना**—नहीं; **भरिल**—भरा; **लञा**—लेकर; **य्राह**—जाओ; **तोर**—आपका; **अन्न**—भोजन; **किछु ना खाइल**—मैने कुछ नहीं खाया है।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने पुनः परिहास में कहा, "मेरा पेट अब भी भरा नहीं है। अपना भोजन ले जाइये। मैंने इसमें से कुछ भी नहीं खाया है।"

এত বলি' এক-গ্রাস ভাত হাতে লঞা ।
উঝালি' ফেলিল আগে যেন ক্রুদ্ধ হঞা ॥৯৪॥

एत बलि' एक-ग्रास भात हाते लञा ।
उझालि' फेलिल आगे ग्रेन क्रुद्ध हञा ॥ ९४॥

एत बलि'—यह कहकर; **एक-ग्रास**—एक ग्रास भर; **भात**—भात; **हाते**—हाथ में; **लञा**—लेकर; **उझालि'**—छोड़कर; **फेलिल**—फेंक दिया; **आगे**—सामने; **ग्रेन**—जैसे, मानो; **क्रुद्ध हञा**—क्रुद्ध होकर।

अनुवाद

यह कहकर नित्यानन्द प्रभु ने एक मुट्ठी चावल लिया और उसे फर्श पर उनके आगे फेंक दिया, मानों वे क्रुद्ध हों।

ভাত দুই-চারি লাগে আচার্যের অঙ্গে ।
ভাত অঙ্গে লঞা আচার্য নাচে বহু-রঙ্গে ॥৯৫॥

भात दुइ-चारि लागे आचार्य्रेर अङ्गे ।
भात अङ्गे लञा आचार्य्र नाचे बहु-रङ्गे ॥ ९५॥

भात दुइ-चारि—फेंके भात के दो चार दाने; **लागे**—स्पर्श कर गये; **आचार्य्रेर अङ्गे**—अद्वैत आचार्य के शरीर को; **भात**—भात; **अङ्गे**—उनके शरीर पर; **लञा**—के साथ; **आचार्य्र नाचे**—आचार्य नाचने लगे; **बहु-रङ्गे**—कई प्रकार से।

अनुवाद

जब इस फेंके हुए चावलों के दो-चार दाने अद्वैत आचार्य के शरीर से लगे, तो वे उसी तरह चावल लगे शरीर से तरह-तरह से नाचने लगे।

অবধূতের ঝুঠা লাগিল মোর অঙ্গে ।
পরম পবিত্র মোরে কৈল এই ঢঙ্গে ॥৯৬॥

अवधूतेर झुठा लागिल मोर अङ्गे ।
परम पवित्र मोरे कैल एइ ढङ्गे ॥ ९६ ॥

अवधूतेर झुठा—अवधूत के झूठे भोजन से; **लागिल**—स्पर्श किया; **मोर**—मेरे; **अङ्गे**—शरीर पर; **परम पवित्र**—परम पवित्र; **मोरे**—मुझे; **कैल**—किया; **एइ**—यह; **ढङ्गे**—व्यवहार।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु द्वारा फेंके गये चावलों का अद्वैत आचार्य के शरीर से स्पर्श हुआ, तो आचार्य ने परमहंस नित्यानन्द द्वारा फेंके गये उस उच्छिष्ट के स्पर्श से अपने आपको परम पवित्र बना समझा। अतः वे नाचने लगे।

तात्पर्य

अवधूत शब्द ऐसे व्यक्ति का सूचक है, जो समस्त विधि-विधानों से परे है। कभी-कभी नित्यानन्द प्रभु संन्यासियों के सारे विधि-विधानों का पालन न करते हुए उन्मत्त अवधूत का आचरण प्रदर्शित करते थे। उन्होंने अपने उच्छिष्ट भोजन को भूमि पर फेंक दिया था, जिसका कुछ भाग अद्वैत आचार्य के शरीर से छू गया था। अद्वैत आचार्य ने इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया, क्योंकि उन्होंने अपने आपको स्मार्त ब्राह्मण के रूप में प्रस्तुत किया। नित्यानन्द प्रभु द्वारा फेंके गये उच्छिष्ट के स्पर्श से अद्वैत आचार्य ने अनुभव किया मानों उनके समस्त स्मार्त कलुष धुल गये हों। शुद्ध वैष्णव का उच्छिष्ट *महामहाप्रसाद* कहलाता है। यह पूर्णतया आध्यात्मिक होता है और विष्णु-तुल्य माना जाता है। ऐसा उच्छिष्ट सामान्य नहीं होता। गुरु को परमहंस समझना चाहिए। गुरु वर्णाश्रम-व्यवस्था के दायरे में नहीं आता। गुरु तथा उसके ही तुल्य परमहंसों या शुद्ध वैष्णवों का उच्छिष्ट पवित्र करने वाला होता है। जब कोई सामान्य व्यक्ति ऐसे प्रसाद का स्पर्श करता है, तो उसका मन शुद्ध हो जाता है और वह शुद्ध ब्राह्मण के पद तक ऊपर उठ जाता है। अद्वैत आचार्य का व्यवहार तथा उनके कथन उन सामान्य लोगों के समझने के लिए हैं, जो आध्यात्मिक शक्ति से अवगत नहीं होते और प्रामाणिक गुरु तथा शुद्ध वैष्णवों के उच्छिष्ट की शक्ति को नहीं जानते।

তোরে নিমন্ত্রণ করি' পাইনু তার ফল ।
তোর জাতি-কুল নাহি, সহজে পাগল ॥৯৭॥

**तोरे निमन्त्रण करि' पाइनु तार फल ।
तोर जाति-कुल नाहि, सहजे पागल ॥ ९७॥**

तोरे—आपको; **निमन्त्रण**—निमंत्रण; **करि'**—देकर; **पाइनु**—मुझे बदले में मिला है; **तार**—उसका; **फल**—फल; **तोर**—आपकी; **जाति-कुल नाहि**—जाति कुल और परिवार को कुछ पता नहीं; **सहजे**—स्वभाव से; **पागल**—पागल हो।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने हँसी-हँसी में कहा, "हे प्रिय नित्यानन्द, मैंने आपको आमन्त्रित किया और उसका फल भी मुझे मिल चुका है। आपकी कोई जाति या कुल निश्चित नहीं है। आप स्वभाव से पागल हो।

तात्पर्य

सहजे पागल शब्द यह सूचित करते हैं कि नित्यानन्द प्रभु दिव्य परमहंस अवस्था में स्थित थे। चूँकि वे सदैव राधा-कृष्ण तथा उनकी सेवा का स्मरण किया करते थे, अतएव यह दिव्य पागलपन था। श्री अद्वैत आचार्य इसी तथ्य की ओर संकेत कर रहे थे।

আপনার সম মোরে করিবার তরে ।
ঝুঠা দিলে, বিপ্র বলি' ভয় না করিলে ॥৯৮॥

**आपनार सम मोरे करिबार तरे ।
झुठा दिले, विप्र बलि' भय ना करिले ॥ ९८॥**

आपनार सम—अपने समान; **मोरे**—मुझे; **करिबार तरे**—बनाने के लिए; **झुठा**—जूठा भोजन; **दिले**—आपने दिया है; **विप्र बलि'**—ब्राह्मण समझकर; **भय**—भय; **ना करिले**—आपने नहीं किया।

अनुवाद

"आपने मुझे भी अपने समान पागल बनाने के लिए ही मेरे ऊपर उच्छिष्ट फेंका है। आपको इसका भी डर नहीं हुआ कि मैं एक ब्राह्मण हूँ।"

तात्पर्य

आपनार सम शब्द इस बात के सूचक हैं कि अद्वैत आचार्य अपने आपको

स्मार्त ब्राह्मण मानते थे और नित्यानन्द प्रभु को शुद्ध वैष्णव के दिव्य पद पर अवस्थित मानते थे। नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें अपना उच्छिष्ट इसीलिए दिया जिससे वे उन्हीं के समान अवस्था को प्राप्त हों और शुद्ध वैष्णव या परमहंस बन सकें। अद्वैत आचार्य का कथन इसका सूचक है कि परमहंस वैष्णव दिव्य पद पर आसीन होता है। शुद्ध वैष्णव पर स्मार्त ब्राह्मणों के विधि-विधान लागू नहीं होते। इसीलिए अद्वैत आचार्य ने कहा—*आपनार सम मोरे करिबार तरे*—"मुझे आपके अपने स्तर पर उन्नत करने के लिए।" शुद्ध वैष्णव या परमहंस उच्छिष्ट (*महा-प्रसाद*) को आध्यात्मिक मानता है। वह उसे भौतिक या इन्द्रियतृप्ति करने वाला नहीं मानता। वह महाप्रसाद को सामान्य दाल-भात नहीं, अपितु आध्यात्मिक वस्तु मानता है। शुद्ध वैष्णव के उच्छिष्ट की बात और ही है, यहाँ तक कि यदि इसे चण्डाल भी जूठा कर दे, तो भी इसके दूषित होने का प्रश्न नहीं उठता। वास्तव में ही, इसकी आध्यात्मिक महत्ता बनी रहती है। अत: ऐसे महाप्रसाद को खाने या छूने से ब्राह्मण पतित नहीं होता; उच्छिष्ट को छू लेने से दूषित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। निस्सन्देह, ऐसा महाप्रसाद खाने से मनुष्य सारे भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाता है। ऐसा शास्त्रों का मत है।

নিত্যানন্দ বলে,—এই কৃষ্ণের প্রসাদ ।
ইহাকে 'ঝুঠা' কহিলে, তুমি কৈলে অপরাধ ॥৯৯॥

नित्यानन्द बले,—एइ कृष्णेर प्रसाद ।
इहाके 'झुठा' कहिले, तुमि कैले अपराध ॥ ९९ ॥

नित्यानन्द बले—प्रभु नित्यानन्द ने कहा; **एइ**—यह; **कृष्णेर प्रसाद**—भगवान् कृष्ण का महाप्रसाद; **इहाके**—इसे; **झुठा**—जूठा भोजन; **कहिले**—यदि आप कहते हो; **तुमि**—आपने; **कैले**—किया है; **अपराध**—अपराध।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया, "यह भगवान् कृष्ण का उच्छिष्ट है। यदि आप इसे सामान्य जूठन समझते है, तो आपने अपराध किया है।"

तात्पर्य

बृहद् विष्णु-पुराण में बतलाया गया है कि जो महाप्रसाद को सामान्य

दाल-भात मानता है, वह महान् अपराध करता है। सामान्य खाद्य वस्तुएँ स्पृश्य तथा अस्पृश्य होती हैं, किन्तु प्रसाद के साथ ऐसा द्वैतभाव नहीं होता। प्रसाद दिव्य होता है। उसमें उसी तरह कोई विकार या कलुष नहीं होता, जिस तरह विष्णु के शरीर में कोई विकार या कलुष नहीं होता। इस तरह कोई, चाहे वह ब्राह्मण ही क्यों न हो, यदि द्वैतभाव रखता है, तो निश्चित रूप से उसे कोढ़ हो जायेगा और वह अपने सारे परिवार वालों के द्वारा त्यक्त हो जायेगा। ऐसा अपराधी नरक जायेगा और वहाँ से कभी नहीं लौटेगा। यह *बृहद् विष्णु-पुराण* का आदेश है।

শতেক সন্ন্যাসী যদি করাহ ভোজন ।
তবে এই অপরাধ হইবে খণ্ডন ॥১০০॥

शतेक सन्न्यासी यदि कराह भोजन ।
तबे एइ अपराध हइबे खण्डन ॥ १०० ॥

शतेक सन्न्यासी—एक सौ संन्यासी; **यदि**—यदि; **कराह**—आप करवाते हो; **भोजन**—भोजन; **तबे**—तब; **एइ**—यह; **अपराध**—अपराध; **हइबे**—होगा; **खण्डन**—खण्डन।

अनुवाद

श्रील नित्यानन्द प्रभु ने आगे कहा, "यदि आप एक सौ संन्यासियों को अपने घर बुलाकर उन्हें भरपेट भोजन कराएंगे, तो आपका अपराध खण्डित हो सकेगा।"

আচার্য কহে—না করিব সন্ন্যাসি-নিমন্ত্রণ ।
সন্ন্যাসী নাশিল মোর সব স্মৃতি-ধর্ম ॥১০১॥

आचार्य कहे—ना करिब सन्न्यासि-निमन्त्रण ।
सन्न्यासी नाशिल मोर सब स्मृति-धर्म ॥ १०१ ॥

आचार्य कहे—अद्वैत आचार्य ने कहा; **ना करिब**—मैं कभी नहीं करूँगा; **सन्न्यासि-निमन्त्रण**—संन्यासियों को निमंत्रण; **सन्न्यासी**—संन्यासी; **नाशिल**—नष्ट कर दिया है; **मोर**—मेरा; **सब**—सब; **स्मृति-धर्म**—स्मृति शास्त्र के विधि विधान।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया, "अब मैं कभी किसी संन्यासी को नहीं

बुलाऊँगा, क्योंकि एक संन्यासी ने ही मेरे सारे ब्राह्मण स्मृति-नियमों को कलुषित कर दिया है।"

এত বলি' দুই জনে করাইল আচমন ।
উত্তম শয্যাতে লইয়া করাইল শয়ন ॥১০২॥

एत बलि' दुइ जने कराइल आचमन ।
उत्तम शय्याते लइया कराइल शयन ॥ १०२ ॥

एत बलि'—यह कहकर; **दुइ जने**—दोनों को; **कराइल आचमन**—उनके हाथ और मुख धुलाए; **उत्तम**—उत्तम; **शय्याते**—बिस्तर पर; **लइया**—लेकर; **कराइल**—करवाया; **शयन**—शयन।

अनुवाद

इसके बाद अद्वैत आचार्य ने दोनों प्रभुओं के हाथ और मुँह धुलवाये। फिर उन्हें उत्तम शय्या पर ले जाकर विश्राम कराने के लिए लिटा दिया।

লবঙ্গ এলাচী-বীজ—উত্তম রস-বাস ।
তুলসী-মঞ্জরী সহ দিল মুখ-বাস ॥১০৩॥

लवङ्ग एलाची-बीज—उत्तम रस-वास ।
तुलसी-मञ्जरी सह दिल मुख-वास ॥ १०३ ॥

लवङ्ग—लौंग; **एलाची**—इलायची; **बीज**—बीज; **उत्तम**—उत्तम; **रस-वास**—रसीले मसाले; **तुलसी-मञ्जरी**—तुलसी मंजरी; **सह**—के साथ; **दिल**—दिया; **मुख-वास**—मुखवास (सुगंध)।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने दोनों जनों को लौंग तथा इलायची के साथ तुलसी-मंजरी का सेवन करवाया। इस तरह उनके मुखों में सुगन्ध आने लगी।

সুগন্ধি চন্দনে লিপ্ত কৈল কলেবর ।
সুগন্ধি পুষ্প-মালা আনি' দিল হৃদয়-উপর ॥১০৪॥

सुगन्धि चन्दने लिप्त कैल कलेवर ।
सुगन्धि पुष्प-माला आनि' दिल हृदय-उपर ॥ १०४॥

सु-गन्धि—सुगन्धित; **चन्दने**—चन्दन का लेप; **लिप्त**—लगाया; **कैल**—किये; **कलेवर**—शरीर; **सु-गन्धि**—सुंगधित; **पुष्प-माला**—पुष्पमालाएँ; **आनि'**—लाकर; **दिल**—दीं; **हृदय-उपर**—वक्ष स्थल पर।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने दोनों प्रभुओं के शरीरों पर चन्दन का लेप किया और फिर उनके वक्षस्थलों पर अत्यन्त सुगन्धित फूलों की मालाएँ पहनाईं।

আচার্য করিতে চাহে পাদ-সংবাহন ।
সঙ্কুচিত হঞা প্রভু বলেন বচন ॥ ১০৫॥

आचार्य करिते चाहे पाद-संवाहन ।
सङ्कुचित हञा प्रभु बलेन वचन ॥ १०५॥

आचार्य—श्री अद्वैत आचार्य; **करिते**—करने के लिए; **चाहे**—चाहते थे; **पाद-संवाहन**—पाँव दबाना; **सङ्कुचित**—संकुचित; **हञा**—होकर; **प्रभु**—महाप्रभु; **बलेन**—कहने लगे; **वचन**—वचन।

अनुवाद

जब महाप्रभु शय्या पर लेट गये, तो अद्वैत आचार्य उनके पाँव दबाना चाहते थे, किन्तु महाप्रभु को संकोच हो रहा था, अतएव वे अद्वैत आचार्य से इस प्रकार बोले।

বহুত নাচাইলে তুমি, ছাড় নাচান ।
মুকুন্দ-হরিদাস লইয়া করহ ভোজন ॥ ১০৬॥

बहुत नाचाइले तुमि, छाड़ नाचान ।
मुकुन्द-हरिदास लइया करह भोजन ॥ १०६॥

बहुत—बहुत, कई तरह; **नाचाइले**—मुझे नचाया है; **तुमि**—आपने; **छाड़**—छोड़ दो; **नाचान**—नचाना; **मुकुन्द**—मुकुन्द; **हरिदास**—हरिदास; **लइया**—के साथ; **करह**—करो; **भोजन**—भोजन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "अद्वैत आचार्य, आपने मुझे बहुत नाच नचाया। अब आप ऐसा करना छोड़ दीजिये। मुकुन्द और हरिदास के साथ जाकर भोजन करें।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु यहाँ पर अद्वैत आचार्य को यह बतला रहे हैं कि संन्यासी के लिए न तो अच्छी शय्या पर लेटना शोभा देता है, न लौंग इलायची खाना और न ही पूरे शरीर पर चन्दन-लेप करना। उसे सुगन्धित फूल-मालाएँ स्वीकार करना और शुद्ध वैष्णव से पाँव दबवाना भी शोभा नहीं देता। चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आपने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पहले ही मुझे नाच नचा दिया है। कृपा करके अब रुक जाइये। अब जाकर मुकुन्द तथा हरिदास के साथ भोजन कीजिये।"

তবে ত' আচার্য সঙ্গে লঞা দুই জনে ।
করিল ইচ্ছায় ভোজন, যে আছিল মনে ॥১০৭॥

तबे त' आचार्य सङ्गे लञा दुइ जने ।
करिल इच्छाय भोजन, ये आछिल मने ॥ १०७ ॥

तबे त'—तत्पश्चात्; **आचार्य**—अद्वैत आचार्य; **सङ्गे**—के साथ; **लञा**—लेकर; **दुइ जने**—दोनों व्यक्ति, मुकुन्द तथा हरिदास; **करिल**—किया; **इच्छाय**—इच्छानुसार; **भोजन**—भोजन; **ये आछिल मने**—मन में जो कुछ था।

अनुवाद

तत्पश्चात् अद्वैत आचार्य ने मुकुन्द तथा हरिदास के साथ प्रसाद ग्रहण किया और उन तीनों ने भरपेट इच्छानुसार भोजन किया।

শান্তিপুরের লোক শুনি' প্রভুর আগমন ।
দেখিতে আইলা লোক প্রভুর চরণ ॥১০৮॥

शान्तिपुरेर लोक शुनि' प्रभुर आगमन ।
देखिते आइला लोक प्रभुर चरण ॥ १०८ ॥

शान्तिपुरेर लोक—शान्तिपुर के सभी लोग; **शुनि'**—सुनकर; **प्रभुर आगमन**—श्री चैतन्य महाप्रभु का आगमन; **देखिते आइला**—देखने आये; **लोक**—सभी लोग; **प्रभुर चरण**—प्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

जब शान्तिपुर के लोगों ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ ठहरे हैं, तो वे तुरन्त ही उनके चरणकमलों का दर्शन करने आये।

'হরি' 'হরি' বলে লোক আনন্দিত হঞা ।
চমৎকার পাইল প্রভুর সৌন্দর্য দেখিঞা ॥১০৯॥

'हरि' 'हरि' बले लोक आनन्दित हञा ।
चमत्कार पाइल प्रभुर सौन्दर्य्य देखिञा ॥ १०९ ॥

हरि हरि—हरि हरि, भगवान् का पावन नाम; **बले**—कहने लगे; **लोक**—सभी लोग; **आनन्दित**—आनन्दित होकर; **हञा**—होकर; **चमत्कार**—चमत्कार; **पाइल**—हो गये; **प्रभुर**—महाप्रभु का; **सौन्दर्य्य**—सौन्दर्य; **देखिञा**—देखकर।

अनुवाद

सारे लोग अत्यन्त हर्षित होकर उच्च स्वर से भगवान् के पवित्र नाम—"हरि! हरि!" का उच्चारण करने लगे। वस्तुतः वे महाप्रभु का सौन्दर्य देखकर वे पूर्णतया आश्चर्यचकित हो गये।

গৌর-দেহ-কান্তি সূর্য জিনিয়া উজ্জ্বল ।
অরুণ-বস্ত্র-কান্তি তাহে করে ঝল-মল ॥১১০॥

गौर-देह-कान्ति सूर्य्य जिनिया उज्ज्वल ।
अरुण-वस्त्र-कान्ति ताहे करे झल-मल ॥ ११० ॥

गौर—गौर वर्ण के; **देह**—शरीर के; **कान्ति**—चमक; **सूर्य्य**—सूर्य; **जिनिया**—जीतने वाली; **उज्ज्वल**—उज्ज्वल; **अरुण**—लाल; **वस्त्र-कान्ति**—वस्त्रों की सुन्दरता; **ताहे**—उसमें; **करे**—कर रहे थे; **झल-मल**—झलमल।

अनुवाद

उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त गौर वर्ण शरीर तथा उनकी उज्ज्वल कान्ति को देखा, जो सूर्य के तेज को भी परास्त करने वाली थी।

इससे भी बढ़कर उनके केसरिया वस्त्रों का सौन्दर्य था, जो उनके शरीर पर झलमल कर रहे थे।

আইসে যায় লোক হর্ষে, নাহি সমাধান ।
লোকের সঙ্ঘট্টে দিন হৈল অবসান ॥১১১॥

आइसे ग्राय लोक हर्षे, नाहि समाधान ।
लोकेर सङ्घट्टे दिन हैल अवसान ॥ १११ ॥

आइसे—आते; **ग्राय**—जाते; **लोक**—सभी लोग; **हर्षे**—हर्ष में; **नाहि**—नहीं है; **समाधान**—समाधान; **लोकेर**—लोगों की; **सङ्घट्टे**—भीड़ में; **दिन**—दिन; **हैल**—हो गया; **अवसान**—अन्त।

अनुवाद

लोग बड़े ही हर्ष के साथ आते और जाते थे। इसकी कोई गिनती न थी कि सूर्यास्त तक वहाँ कितने लोग एकत्र हुए थे।

সন্ধ্যাতে আচার্য আরম্ভিল সঙ্কীর্তন ।
আচার্য নাচেন, প্রভু করেন দর্শন ॥১১২॥

सन्ध्याते आचार्य आरम्भिल सङ्कीर्तन ।
आचार्य नाचेन, प्रभु करेन दर्शन ॥ ११२ ॥

सन्ध्याते—संध्या में; **आचार्य**—अद्वैत आचार्य; **आरम्भिल**—आरम्भ किया; **सङ्कीर्तन**—संकीर्तन; **आचार्य**—अद्वैत आचार्य; **नाचेन**—नाचने लगे; **प्रभु**—महाप्रभु; **करेन**—करते; **दर्शन**—दर्शन।

अनुवाद

शाम होते ही अद्वैत आचार्य ने सामूहिक कीर्तन प्रारम्भ किया। वे स्वयं भी नृत्य करने लगे और महाप्रभु उनका नृत्य देखने लगे।

নিত্যানন্দ গোসাঞি বুলে আচার্য ধরিঞা ।
হরিদাস পাছে নাচে হরষিত হঞা ॥১১৩॥

नित्यानन्द गोसाञि बुले आचार्य धरिञा ।
हरिदास पाछे नाचे हरषित हञा ॥ ११३ ॥

नित्यानन्द गोसाञि—नित्यानन्द प्रभु; **बुले**—नाचने लगे; **आचार्य धरित्रा**—श्री अद्वैत आचार्य के पीछे पीछे; **हरिदास**—हरिदास ठाकुर; **पाछे**—पीछे; **नाचे**—नाचने लगे; **हरषित हञा**—हर्षित होकर।

अनुवाद

जब अद्वैत आचार्य नाचने लगे, तो नित्यानन्द प्रभु उनके पीछे पीछे नाचने लगे। हरिदास ठाकुर भी अत्यन्त हर्षित होकर उनके पीछे नाचने लगे।

কি কহিব রে সখি আজুক আনন্দ ওর ।
চির-দিনে মাধব মন্দিরে মোর ॥১১৪॥

कि कहिब रे सखि आजुक आनन्द ओर ।
चिर-दिने माधव मन्दिरे मोर ॥ ११४॥

कि—क्या; **कहिब**—मैं कहूँ; **रे**—हे; **सखि**—मेरी प्यारी सखियों; **आजुक**—आज; **आनन्द**—आनन्द; **ओर**—सीमा; **चिर-दिने**—कई दिनों के बाद; **माधव**—भगवान् कृष्ण; **मन्दिरे**—मन्दिर में; **मोर**—मेरे।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "'हे सखियों! मैं क्या कहूँ? आज मुझे सर्वोच्च दिव्य आनन्द प्राप्त हुआ है। अनेकानेक दिनों के बाद भगवान् कृष्ण मेरे घर पधारे हैं।'"

तात्पर्य

यह विद्यापति द्वारा विरचित गीत है। कभी-कभी *माधव* शब्द से भूल से माधवेन्द्र पुरी अर्थ निकाला जाता है। अद्वैत आचार्य माधवेन्द्र पुरी के शिष्य थे, इसीलिए कुछ लोग 'माधव' शब्द का प्रयोग होने से यह अनुमान लगाते हैं कि यह माधवेन्द्र पुरी के लिए आया है। किन्तु यह तथ्य नहीं है। यह गीत मथुरा में कृष्ण की अनुपस्थिति के समय राधारानी से कृष्ण के विरह की स्मृति में रचा गया था। जब श्रीकृष्ण लौट आये, तो यह गीत श्रीमती राधारानी के द्वारा गाया गया था। यह *मथुरा-विरह* के नाम से विख्यात है।

এই পদ গাওয়াইয়া হর্ষে করেন নর্তন ।
স্বেদ-কম্প-পুলকাশ্রু-হুঙ্কার-গর্জন ॥ ১১৫ ॥

एइ पद गाओयाइया हर्षे करेन नर्तन ।
स्वेद-कम्प-पुलकाश्रु-हुङ्कार-गर्जन ॥ ११५ ॥

एइ पद—यह श्लोक; **गाओयाइया**—गंवाया; **हर्षे**—खुशी में; **करेन**—किया; **नर्तन**—नृत्य; **स्वेद**—पसीना; **कम्प**—कंपन; **पुलक**—पुलकित होना; **अश्रु**—खुशी के आँसू; **हुङ्कार**—हुंकार; **गर्जन**—गर्जन लेना।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य संकीर्तन टोली का नेतृत्व कर रहे थे और उन्होंने इस श्लोक को बड़े हर्ष से गाया। उनके शरीर में भावमय स्वेद, कँपकँपी, रोमांच, अश्रु तथा कभी-कभी गर्जन और हुंकार का प्राकट्य हो रहा था।

ফিরি' ফিরি' কভু প্রভুর ধরেন চরণ ।
চরণে ধরিয়া প্রভুরে বলেন বচন ॥ ১১৬ ॥

फिरि' फिरि' कभु प्रभुर धरेन चरण ।
चरणे धरिया प्रभुरे बलेन वचन ॥ ११६ ॥

फिरि' फिरि'—घूम-घूमकर; **कभु**—कभी-कभी; **प्रभुर**—महाप्रभु के; **धरेन**—पकड़ते; **चरण**—चरणकमल; **चरणे धरिया**—चरणकमल पकड़कर; **प्रभुरे**—महाप्रभु को; **बलेन**—कहते; **वचन**—शब्द।

अनुवाद

नाचते हुए अद्वैत आचार्य चक्राकार घूमने लगते और श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लेते। फिर वे उनसे इस प्रकार बोलते।

অনেক দিন তুমি মোরে বেড়াইলে ভাণ্ডিয়া ।
ঘরেতে পাঞাছি, এবে রাখিব বান্ধিয়া ॥ ১১৭ ॥

अनेक दिन तुमि मोरे बेड़ाइले भाण्डिया ।
घरेते पाञाछि, एबे राखिब बान्धिया ॥ ११७ ॥

अनेक दिन—अनेक दिन; **तुमि**—आप; **मोरे**—मुझसे; **बेड़ाइले**—दूर रहे; **भाण्डिया**—बहकाकर; **घरेते**—मेरे घर पर; **पाञाछि**—मुझे मिले हैं; **एबे**—अब; **राखिब**—मैं रखूँगा; **बान्धिया**—बाँध के।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य कहने लगे, "आप बहुत दिनों तक बहकाकर मुझसे बचते रहे। अब आप मेरे घर आये हैं और मैं आपको बाँधकर रखूँगा।"

এত বলি' আচার্য আনন্দে করেন নর্তন ।
প্রহরেক-রাত্রি আচার্য কৈল সঙ্কীর্তন ॥১১৮॥

एत बलि' आचार्य्य आनन्दे करेन नर्तन ।
प्रहरेक-रात्रि आचार्य्य कैल सङ्कीर्तन ॥ ११८ ॥

एत बलि'—यह कहकर; **आचार्य्य**—अद्वैत आचार्य; **आनन्दे**—आनन्द में; **करेन**—करते; **नर्तन**—नृत्य; **प्रहरेक**—लगभग तीन घण्टे; **रात्रि**—रात को; **आचार्य्य**—श्री अद्वैत आचार्य; **कैल सङ्कीर्तन**—संकीर्तन किया।

अनुवाद

इस तरह कहते हुए उस रात को अद्वैत आचार्य ने बड़े ही आनन्द के साथ तीन घंटे तक संकीर्तन किया और सारे समय नाचते रहे।

প্রেমের উৎকণ্ঠা,—প্রভুর নাহি কৃষ্ণ-সঙ্গ ।
বিরহে বাড়িল প্রেম-জ্বালার তরঙ্গ ॥১১৯॥

प्रेमेर उत्कण्ठा,—प्रभुर नाहि कृष्ण-सङ्ग ।
विरहे बाड़िल प्रेम-ज्वालार तरङ्ग ॥ ११९ ॥

प्रेमेर उत्कण्ठा—प्रेम का आवेश; **प्रभुर**—महाप्रभु का; **नाहि**—नहीं; **कृष्ण-सङ्ग**—भगवान् कृष्ण के साथ मिलन; **विरहे**—विरह में; **बाड़िल**—बढ़ गया; **प्रेम-ज्वालार**—प्रेम की ज्वालाएँ; **तरङ्ग**—तरंगें।

अनुवाद

जब अद्वैत आचार्य इस प्रकार नृत्य कर रहे थे, तब चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण के भावोल्लासमय प्रेम की अनुभूति हुई और उनके विरह के कारण प्रेम की लहरें और ज्वालाएँ तीव्रतर हो उठीं।

ব্যাকুল হঞা প্রভু ভূমিতে পড়িলা ।
গোসাঞি দেখিয়া আচার্য নৃত্য সম্বরিলা ॥১২০॥

व्याकुल हञा प्रभु भूमिते पड़िला ।
गोसाञि देखिया आचार्य्य नृत्य सम्बरिला ॥ १२० ॥

व्याकुल हञा—व्याकुल होकर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **भूमिते**—भूमि पर; **पड़िला**—गिर गये; **गोसाञि**—प्रभु; **देखिया**—देखकर; **आचार्य्य**—अद्वैत आचार्य; **नृत्य**—नृत्य; **सम्बरिला**—रोक दिया।

अनुवाद

भावोल्लास से व्याकुल होकर श्री चैतन्य महाप्रभु सहसा भूमि पर गिर पड़े। यह देखकर अद्वैत आचार्य ने नृत्य करना बन्द कर दिया।

প্রভুর অন্তর মুকুন্দ জানে ভাল-মতে ।
ভাবের সদৃশ পদ লাগিলা গাইতে ॥১২১॥

प्रभुर अन्तर मुकुन्द जाने भाल-मते ।
भावेर सदृश पद लागिला गाइते ॥ १२१ ॥

प्रभुर—महाप्रभु का; **अन्तर**—हृदय; **मुकुन्द**—मुकुन्द; **जाने**—जानते थे; **भाल-मते**—अच्छी तरह; **भावेर**—भाव के अनुसार; **सदृश**—उचित; **पद**—श्लोक; **लागिला गाइते**—गाने लगे।

अनुवाद

जब मुकुन्द ने श्री चैतन्य महाप्रभु के भावोल्लास को देखा, तो वे महाप्रभु की मनोदशा को समझते हुए उनके भाव को पुष्ट करने वाले अनेक पद गाने लगे।

আচার্য উঠাইল প্রভুকে করিতে নর্তন ।
পদ শুনি' প্রভুর অঙ্গ না যায় ধারণ ॥১২২॥

आचार्य्य उठाइल प्रभुके करिते नर्तन ।
पद शुनि' प्रभुर अङ्ग ना याय धारण ॥ १२२ ॥

आचार्य्य—अद्वैत आचार्य; **उठाइल**—उठाये; **प्रभुके**—प्रभु को; **करिते**—करने के लिए;

नर्तन—नृत्य; **पद शुनि'**—श्लोक सुनकर; **प्रभुर**—महाप्रभु का; **अङ्ग**—तन; **ना**—नहीं; **याय**—सम्भव; **धारण**—पकड़ना।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु को उठाया जिससे वे नृत्य कर सकें, किन्तु मुकुन्द द्वारा गाये जाने वाले पदों को सुनकर महाप्रभु को उनके शारीरिक लक्षणों के कारण पकड़े नहीं रखे जा सके।

অশ্রু, কম্প, পুলক, স্বেদ, গদগদ বচন ।
ক্ষণে উঠে, ক্ষণে পড়ে, ক্ষণেক রোদন ॥১২৩॥

अश्रु, कम्प, पुलक, स्वेद, गद्गद वचन ।
क्षणे उठे, क्षणे पड़े, क्षणेक रोदन ॥ १२३॥

अश्रु—अश्रु; **कम्प**—कम्पन; **पुलक**—रोम हर्ष होना; **स्वेद**—पसीना; **गद्गद**—गद्गद् होना; **वचन**—शब्द; **क्षणे**—कभी-कभी; **उठे**—उठते; **क्षणे**—कभी-कभी; **पड़े**—नीचे गिरते; **क्षणेक**—कभी-कभी; **रोदन**—रोदन करते।

अनुवाद

उनके नेत्रों से अश्रु गिरने लगे और उनका सारा शरीर काँपने लगा। उन्हें रोमांच हो आया, उनका शरीर स्वेदमय हो गया और उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई। कभी वे उठ खड़े होते और कभी गिर पड़ते, तो कभी रोदन करने लगते।

হা হা প্রাণ-প্রিয়-সখি, কি না হৈল মোরে ।
কানু-প্রেম-বিষে মোর তনু-মন জরে ॥১২৪॥

हा हा प्राण-प्रिय-सखि, कि ना हैल मोरे ।
कानु-प्रेम-विषे मोर तनु-मन जरे ॥ १२४॥

हा हा—हा, हा; **प्राण-प्रिय-सखि**—प्राण प्रिय सखि; **कि ना हैल मोरे**—मुझे क्या नहीं हुआ; **कानु-प्रेम-विषे**—कृष्ण-प्रेम का विष; **मोर**—मेरे; **तनु**—शरीर; **मन**—मन; **जरे**—कष्ट देता है।

अनुवाद

मुकुन्द गाने लगे, ""हे प्राण प्रिय सखि! मेरे साथ क्या-क्या नहीं

बीता! कृष्ण के प्रेमरूपी विष के प्रभाव से मेरा शरीर तथा मन दोनों अत्यन्त पीड़ित हैं।

तात्पर्य

जब मुकुन्द ने देखा कि चैतन्य महाप्रभु को भावोल्लासमयी पीड़ा हो रही है और उनके शरीर में कृष्ण के विरह के कारण भाव के लक्षण प्रकट हो रहे हैं, तो वे कृष्ण-मिलन के गीत गाने लगे। अद्वैत आचार्य ने भी नृत्य बन्द कर दिया।

রাত্রি-দিনে পোড়ে মন সোয়াস্তি না পাঁ ।
যাহাঁ গেলে কানু পাঁ, তাহাঁ উড়ি' যাঁ ॥ ১২৫ ॥

रात्रि-दिने पोड़े मन सोयास्ति ना पाँ ।
ग्राहाँ गेले कानु पाँ, ताहाँ उड़ि' ग्राँ ॥ १२५ ॥

रात्रि-दिने—दिन रात; **पोड़े**—जलता है; **मन**—मन; **सोयास्ति**—विश्राम; **ना**—नहीं; **पाँ**—पाता हूँ; **ग्राहाँ**—कहीं; **गेले**—यदि जाने से ; **कानु पाँ**—मैं कृष्ण को पा सकता हूँ; **ताहाँ**—वहाँ; **उड़ि'**—उड़कर; **ग्राँ**—मैं जाता हूँ।

अनुवाद

"'मेरी भावना इस प्रकार है : मेरा मन दिन-रात जलता है और मुझे तनिक भी आराम नहीं मिलता। यदि कोई ऐसा स्थान हो, जहाँ मैं श्रीकृष्ण से मिलने जा सकूँ, तो मैं तुरन्त वहाँ उड़कर चली जाऊँ।'"

এই পদ গায় মুকুন্দ মধুর সুস্বরে ।
শুনিয়া প্রভুর চিত্ত অন্তরে বিদরে ॥ ১২৬ ॥

एइ पद गाय मुकुन्द मधुर सुस्वरे ।
शुनिया प्रभुर चित्त अन्तरे विदरे ॥ १२६ ॥

एइ पद—यह श्लोक; **गाय**—गाया; **मुकुन्द**—मुकुन्द; **मधुर**—मधुर; **सु-स्वरे**—स्वर में; **शुनिया**—सुनकर; **प्रभुर**—महाप्रभु का; **चित्त**—मन; **अन्तरे**—भीतर; **विदरे**—टूट गया।

अनुवाद

मुकुन्द ने इस पद को अत्यन्त मधुर स्वर में गाया, किन्तु ज्योंही श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह पद सुना, उनका हृदय विदीर्ण हो गया।

নির্বেদ, বিষাদ, হর্ষ, চাপল্য, গর্ব, দৈন্য ।
প্রভুর সহিত যুদ্ধ করে ভাব-সৈন্য ॥১২৭॥

निर्वेद, विषाद, हर्ष, चापल्य, गर्व, दैन्य ।
प्रभुर सहित ग्नुद्ध करे भाव-सैन्य ॥ १२७॥

निर्वेद—निराशा; **विषाद**—खिन्नता; **हर्ष**—हर्ष; **चापल्य**—अस्थिरता; **गर्व**—गर्व; **दैन्य**—दीनता; **प्रभुर**—महाप्रभु; **सहित**—सहित; **ग्नुद्ध**—युद्ध; **करे**—करते; **भाव**—भाव; **सैन्य**—सैनिक।

अनुवाद

दिव्य भावों के सारे लक्षण यथा निराशा, खिन्नता, हर्ष, चपलता, गर्व तथा दीनता महाप्रभु के हृदय में सैनिकों की तरह लड़ने लगे।

तात्पर्य

हर्ष का वर्णन *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में हुआ है। *हर्ष* का अनुभव तब होता है, जब किसी को जीवन का लक्ष्य प्राप्त हो जाता है, फलस्वरूप वह अत्यन्त प्रसन्न होता है। हर्ष होने पर शरीर काँपता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं, पसीना छूटता है, अश्रु आते हैं और भावावेग तथा उन्माद का विस्फोट होता है। मुँह फूल जाता है और व्यक्ति जड़ता तथा भ्रम का अनुभव करता है। जब मनुष्य को इच्छित लक्ष्य प्राप्त हो जाता है और वह अपने आपको भाग्यशाली समझता है, तो उसके शरीर की कान्ति बढ़ जाती है। जब व्यक्ति अपने गुण एवं महानता के भावों के कारण किसी की परवाह नहीं करता, तो यह *गर्व* कहलाता है। इस स्थिति में मनुष्य स्तुति करता है और किसी के प्रश्नों का उत्तर नहीं देता। अपने शरीर को देखना, अपनी इच्छाओं को छिपाना तथा अन्यों के वचनों की परवाह न करना 'गर्व' भाव के लक्षण हैं।

জর-জর হৈল প্রভু ভাবের প্রহারে ।
ভূমিতে পড়িল, শ্বাস নাহিক শরীরে ॥১২৮॥

जर-जर हैल प्रभु भावेर प्रहारे ।
भूमिते पड़िल, श्वास नाहिक शरीरे ॥ १२८॥

जर-जर—जर्जर; **हैल**—हो गये; **प्रभु**—महाप्रभु; **भावेर**—भाव के; **प्रहारे**—आक्रमण,

प्रहार; **भूमिते**—भूमि पर; **पड़िल**—गिर गये; **श्वास**—श्वास; **नाहिक**—नहीं था; **शरीरे**—शरीर में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का सारा शरीर विविध भाव-लक्षणों के प्रहार से जर्जर होने लगा। फलस्वरूप वे तुरन्त ही भूमि पर गिर गये और उनकी साँस रुक-सी गई।

দেখিয়া চিন্তিত হৈলা যত ভক্ত-গণ ।
আচম্বিতে উঠে প্রভু করিয়া গর্জন ॥১২৯॥

देखिया चिन्तित हैला य़त भक्त-गण ।
आचम्बिते उठे प्रभु करिया गर्जन ॥ १२९ ॥

देखिया—देखकर; **चिन्तित**—चिन्तित; **हैला**—हो गये; **य़त**—सभी; **भक्त-गण**—भक्तगण; **आचम्बिते**—अचानक; **उठे**—उठ गये; **प्रभु**—महाप्रभु; **करिया**—करके; **गर्जन**—गर्जना।

अनुवाद

महाप्रभु की यह दशा देखकर सारे भक्त अत्यन्त चिन्तित हो उठे। तभी महाप्रभु सहसा उठ खड़े हुए और गर्जना करने लगे।

'বল্' 'বল্' বলে, নাচে, আনন্দে বিহ্বল ।
বুঝন না যায় ভাব-তরঙ্গ প্রবল ॥১৩০॥

'बल्' 'बल्' बले, नाचे, आनन्दे विह्वल ।
बुझन ना य़ाय भाव-तरङ्ग प्रबल ॥ १३० ॥

बल् बल्—बोलो, बोलो; **बले**—महाप्रभु ने कहा; **नाचे**—नृत्य करते हैं; **आनन्दे**—आनन्द में; **विह्वल**—विह्वल होकर; **बुझन**—समझना; **ना य़ाय**—नहीं सम्भव; **भाव-तरङ्ग**—भाव तरंगों के आवेश को; **प्रबल**—प्रबल।

अनुवाद

महाप्रभु ने उठकर कहा, "बोलते रहो! बोलते रहो!" इस तरह वे आनन्द-विभोर होकर नाचने लगे। कोई भी उनके इस भाव की प्रबल तरंगों को जान नहीं सका।

নিত্যানন্দ সঙ্গে বুলে প্রভুকে ধরিঞা ।
আচার্য, হরিদাস বুলে পাছে ত' নাচিঞা ॥১৩১॥

नित्यानन्द सङ्गे बुले प्रभुके धरिञा ।
आचार्य्, हरिदास बुले पाछे त' नाचिञा ॥ १३१ ॥

नित्यानन्द—नित्यानन्द प्रभु; **सङ्गे**—के साथ; **बुले**—चलने लगे; **प्रभुके**—महाप्रभु को; **धरिञा**—पकड़कर; **आचार्य्**—अद्वैत आचार्य; **हरिदास**—ठाकुर हरिदास; **बुले**—चलने लगे; **पाछे**—पीछे; **त**—अवश्य; **नाचिञा**—नृत्य करते हुए।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ चलने लगे, जिससे वे गिरे नहीं और अद्वैत आचार्य तथा हरिदास ठाकुर नाचते हुए उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

এই মত প্রহরেক নাচে প্রভু রঙ্গে ।
কভু হর্ষ, কভু বিষাদ, ভাবের তরঙ্গে ॥১৩২॥

एइ मत प्रहरेक नाचे प्रभु रङ्गे ।
कभु हर्ष, कभु विषाद, भावेर तरङ्गे ॥ १३२ ॥

एइ मत—इस प्रकार; **प्रहरेक**—लगभग तीन घण्टों तक; **नाचे**—नृत्य किया; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **रङ्गे**—भावावेश में; **कभु**—कभी-कभी; **हर्ष**—हर्ष; **कभु**—कभी-कभी; **विषाद**—उदासीनता; **भावेर**—भावावेश की; **तरङ्गे**—तरंगों में।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु कम-से-कम तीन घंटे नृत्य करते रहे। कभी-कभी उनमें हर्ष, विषाद तथा अन्य भावों की अनेक तरंगे दृष्टिगोचर होती थीं।

তিন দিন উপবাসে করিয়া ভোজন ।
উদ্দণ্ড-নৃত্যেতে প্রভুর হৈল পরিশ্রম ॥১৩৩॥

तिन दिन उपवासे करिया भोजन ।
उद्दण्ड-नृत्येते प्रभुर हैल परिश्रम ॥ १३३ ॥

तिन दिन—तीन दिन; **उपवासे**—उपवास में; **करिया**—करके; **भोजन**—भोजन;

उद्दण्ड—जोर से कूदना; **नृत्येते**—नृत्य में; **प्रभुर**—महाप्रभु को; **हैल**—हो गई; **परिश्रम**—थकावट।

अनुवाद

महाप्रभु तीन दिनों से उपवास कर रहे थे और उसके बाद उन्होंने पर्याप्त भोजन किया था। अतएव जब वे नाचे और ऊँचा कूदे, तो उन्हें थोड़ी थकान हो आई।

তবু ত' না জানে শ্রম প্রেমাবিষ্ট হঞা ।
নিত্যানন্দ মহাপ্রভুকে রাখিল ধরিঞা ॥১৩৪॥

तबु त' ना जाने श्रम प्रेमाविष्ट हञा ।
नित्यानन्द महाप्रभुके राखिल धरिञा ॥ १३४॥

तबु—तथापि; **त'**—निश्चित रूप से; **ना जाने**—अनुभव नहीं कर रहे थे; **श्रम**—श्रम, थकान; **प्रेम-आविष्ट**—प्रेम में डूबकर; **हञा**—होकर; **नित्यानन्द**—नित्यानन्द प्रभु; **महाप्रभुके**—चैतन्य महाप्रभु को; **राखिल**—रोक दिया; **धरिञा**—पकड़कर।

अनुवाद

किन्तु भगवत् प्रेम में पूर्णतः मग्न होने के कारण महाप्रभु थकान का अनुभव नहीं कर रहे थे। फिर भी नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें पकड़ लिया और उन्हें नाचने से रोका।

আচার্য-গোসাঞি তবে রাখিল কীর্তন ।
নানা সেবা করি' প্রভুকে করাইল শয়ন ॥১৩৫॥

आचार्य-गोसाञि तबे राखिल कीर्तन ।
नाना सेवा करि' प्रभुके कराइल शयन ॥ १३५॥

आचार्य-गोसाञि—अद्वैत आचार्य; **तबे**—तब; **राखिल**—रोक दिया; **कीर्तन**—कीर्तन; **नाना**—नाना प्रकार की; **सेवा**—सेवाएँ; **करि'**—करके; **प्रभुके**—महाप्रभु को; **कराइल**—करवाया; **शयन**—विश्राम।

अनुवाद

यद्यपि महाप्रभु थके हुए थे, किन्तु नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें पकड़कर

शान्त किया। उस समय अद्वैत आचार्य ने कीर्तन समाप्त कर दिया और तरह-तरह की सेवाएँ करके महाप्रभु को विश्राम हेतु शयन करवाया।

এই-মত দশ-দিন ভোজন-কীর্তন ।
এক-রূপে করি' করে প্রভুর সেবন ॥১৩৬॥

एइ-मत दश-दिन भोजन-कीर्तन ।
एक-रूपे करि' करे प्रभुर सेवन ॥ १३६ ॥

एइ-मत—इस प्रकार; **दश-दिन**—लगातार दस दिन; **भोजन-कीर्तन**—भोजन करना और कीर्तन करना; **एक-रूपे**—बिना परिवर्तन के; **करि'**—करके; **करे**—की; **प्रभुर**—महाप्रभु की; **सेवन**—सेवा।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने इस प्रकार लगातार दस दिनों तक शाम के समय भोज और कीर्तन का आयोजन किया। वे बिना किसी परिवर्तन के महाप्रभु की इस तरह सेवा करते रहे।

প্রভাতে আচার্যরত্ন দোলায় চড়াঞা ।
ভক্ত-গণ-সঙ্গে আইলা শচীমাতা লঞা ॥১৩৭॥

प्रभाते आचार्य्यरत्न दोलाय चड़ाञा ।
भक्त-गण-सङ्गे आइला शचीमाता लञा ॥ १३७ ॥

प्रभाते—प्रात: काल; **आचार्य्यरत्न**—चन्द्रशेखर; **दोलाय**—पालकी में; **चड़ाञा**—बैठाकर; **भक्त-गण-सङ्गे**—भक्तों सहित; **आइला**—आया; **शची-माता**—माता शची को; **लञा**—लेकर।

अनुवाद

प्रात:काल चन्द्रशेखर शचीमाता को उनके घर से पालकी में बैठाकर अनेक भक्तों समेत ले आये।

নদীয়া-নগরের লোক—স্ত্রী-বালক-বৃদ্ধ ।
সব লোক আইলা, হৈল সঙ্ঘট্ট সমৃদ্ধ ॥১৩৮॥

नदीया-नगरेर लोक—स्त्री-बालक-वृद्ध ।
सब लोक आइला, हैल सङ्घट्ट समृद्ध ॥ १३८ ॥

नदीया—नदिया नामक; **नगरेर**—नगर के; **लोक**—लोग; **स्त्री**—महिलाएँ; **बालक**—बालक; **वृद्ध**—वृद्ध; **सब लोक**—सब लोग; **आइला**—आये; **हैल**—हो गई; **सङ्घट्ट**—भीड़; **समृद्ध**—विशाल।

अनुवाद

इस प्रकार नदिया नगर के सारे लोग—जिसमें स्त्रियाँ, बालक तथा वृद्ध सम्मिलित थे—वहाँ आये। इस तरह वहाँ विशाल भीड़ एकत्र हो गई।

প্রাতঃ-কৃত্য করি' করে নাম-সঙ্কীর্তন ।
শচীমাতা লঞা আইলা অদ্বৈত-ভবন ॥ ১৩৯॥

प्रात:-कृत्य करि' करे नाम-सङ्कीर्तन ।
शचीमाता लञा आइला अद्वैत-भवन ॥ १३९ ॥

प्रात:-कृत्य—प्रात: काल के दैनिक कार्यों से; **करि'**—निवृत्त होकर ; **करे**—कर रहे थे; **नाम-सङ्कीर्तन**—हरे कृष्ण मंत्र का संकीर्तन; **शची-माता**—माता शची; **लञा**—के साथ; **आइला**—आये; **अद्वैत-भवन**—अद्वैत आचार्य के घर पर।

अनुवाद

प्रात:काल शौच आदि दैनिक कृत्यों से निवृत्त होने के बाद जब महाप्रभु हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर रहे थे, तभी शचीमाता के साथ लोग अद्वैत आचार्य के घर पहुँचे।

শচী-আগে পড়িলা প্রভু দণ্ডবৎ হঞা ।
কান্দিতে লাগিলা শচী কোলে উঠাইঞা ॥ ১৪০॥

शची-आगे पड़िला प्रभु दण्डवत् हञा ।
कान्दिते लागिला शची कोले उठाइञा ॥ १४० ॥

शची-आगे—माता शची के सामने; **पड़िला**—गिर गये; **प्रभु**—महाप्रभु; **दण्ड-वत्**—दण्डवत्; **हञा**—होकर; **कान्दिते**—रोने; **लागिला**—लगी; **शची**—माता शची; **कोले**—गोद में; **उठाइञा**—लेकर।

अनुवाद

ज्योंही शचीमाता वहाँ पहुँचीं, तो चैतन्य महाप्रभु उनके चरणों में दण्ड के समान गिर पड़े। शचीमाता महाप्रभु को गोद में लेकर रोने लगीं।

দোঁহার দর্শনে দুঁহে হইলা বিহ্বল ।
কেশ না দেখিয়া শচী হইলা বিকল ॥১৪১॥

दोंहार दर्शने दुँहे हइला विह्वल ।
केश ना देखिया शची हइला विकल ॥ १४१ ॥

दोंहार दर्शने—एक दूसरे को देखकर; **दुँहे**—वे दोनों; **हइला**—हो गये; **विह्वल**—विह्वल; **केश**—बाल; **ना**—न; **देखिया**—देखकर; **शची**—माता शची; **हइला**—हो गईं; **विकल**—व्याकुल।

अनुवाद

एक-दूसरे को देखकर दोनों विह्वल हो उठे। महाप्रभु के शिर को केशविहीन देखकर शचीमाता अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठीं।

অঙ্গ মুছে, মুখ চুম্বে, করে নিরীক্ষণ ।
দেখিতে না পায়,—অশ্রু ভরিল নয়ন ॥১৪২॥

अङ्ग मुछे, मुख चुम्बे, करे निरीक्षण ।
देखिते ना पाय,—अश्रु भरिल नयन ॥ १४२ ॥

अङ्ग—शरीर; **मुछे**—थपकती हैं; **मुख**—मुख; **चुम्बे**—चूमती हैं; **करे**—करती हैं; **निरीक्षण**—देखती हैं; **देखिते**—देखने के लिए; **ना पाय**—सक्षम नहीं; **अश्रु**—अश्रु; **भरिल**—भरे; **नयन**—नयन।

अनुवाद

स्नेहवश वे महाप्रभु के शरीर पर हाथ फेरने लगीं। कभी वे मुख चूमतीं और ध्यान से उन्हें देखने का प्रयत्न करतीं, किन्तु अश्रुपूरित नेत्र होने के कारण वे देख न सकीं।

কান্দিয়া কহেন শচী, বাছারে নিমাঞি ।
বিশ্বরূপ-সম না করিহ নিঠুরাই ॥১৪৩॥

कान्दिया कहेन शची, बाछारे निमाञि ।
विश्वरूप-सम ना करिह निठुराइ ॥ १४३ ॥

कान्दिया—रोते हुए; **कहेन**—कहा; **शची**—माता शची; **बाछारे**—मेरे प्रिय पुत्र; **निमाञि**—हे निमाइ; **विश्वरूप**—विश्वरूप; **सम**—की तरह; **ना करिह**—न करो; **निठुराइ**—अत्याचार।

अनुवाद

यह समझकर कि चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण कर लिया है, शचीमाता ने रोते हुए महाप्रभु से कहा, "मेरे दुलारे निमाइ! तुम अपने बड़े भाई विश्वरूप की तरह निष्ठुर न बनो।"

সন্ন্যাসী হইয়া পুনঃ না দিল দরশন ।
তুমি তৈছে কৈলে মোর হইবে মরণ ॥১৪৪॥

सन्न्यासी हइया पुनः ना दिल दरशन ।
तुमि तैछे कैले मोर हइबे मरण ॥ १४४ ॥

सन्न्यासी—संन्यासी; **हइया**—होकर; **पुनः**—पुनः; **ना**—न; **दिल**—दिया; **दरशन**—दर्शन; **तुमि**—तुम; **तैछे**—उस प्रकार; **कैले**—यदि करते हो; **मोर**—मेरी; **हइबे**—हो जायेगी; **मरण**—मृत्यु।

अनुवाद

शचीमाता ने कहा, "विश्वरूप ने संन्यास लेने के बाद फिर मुझे कभी दर्शन नहीं दिया। यदि तुम उसी की तरह करोगे, तो तुम समझ लो कि निश्चित रूप से मेरी मृत्यु हो जायेगी।"

কান্দিয়া বলেন প্রভু—শুন, মোর আই ।
তোমার শরীর এই, মোর কিছু নাই ॥১৪৫॥

कान्दिया बलेन प्रभु—शुन, मोर आइ ।
तोमार शरीर एइ, मोर किछु नाइ ॥ १४५ ॥

कान्दिया—रोते हुए; **बलेन**—कहा; **प्रभु**—महाप्रभु; **शुन**—सुन; **मोर**—मेरी; **आइ**—माता; **तोमार**—आपका; **शरीर**—शरीर; **एइ**—यह; **मोर**—मेरा; **किछु**—कुछ; **नाइ**—नहीं है।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "हे माता! कृपया सुनिये। यह शरीर आपका है। मेरा अपना कुछ भी नहीं है।

তোমার পালিত দেহ, জন্ম তোমা হৈতে ।
কোটি জন্মে তোমার ঋণ না পারি শোধিতে ॥১৪৬॥

तोमार पालित देह, जन्म तोमा हैते ।
कोटि जन्मे तोमार ऋण ना पारि शोधिते ॥ १४६ ॥

तोमार—आपका; **पालित**—पाला पोसा; **देह**—शरीर; **जन्म**—जन्म; **तोमा**—आप; **हैते**—से; **कोटि**—लाखों; **जन्मे**—जन्मों में; **तोमार**—आपका; **ऋण**—ऋण; **ना**—नहीं; **पारि**—सक्षम हूँ; **शोधिते**—चुकाने में।

अनुवाद

"यह शरीर आपके द्वारा पाला-पोसा गया है और यह आपसे ही उत्पन्न है। मैं करोड़ों जन्मों में भी यह ऋण नहीं चुका सकता।

জানি' বা না জানি' কৈল যদ্যপি সন্ন্যাস ।
তথাপি তোমারে কভু নহিব উদাস ॥১৪৭॥

जानि' वा ना जानि' कैल यद्यपि सन्न्यास ।
तथापि तोमारे कभु नहिब उदास ॥ १४७ ॥

जानि'—जानकर; **वा**—अथवा; **ना**—न; **जानि'**—जानकर; **कैल**—स्वीकार किया; **यद्यपि**—यद्यपि; **सन्न्यास**—संन्यास; **तथापि**—तथापि; **तोमारे**—आपसे; **कभु**—कभी भी; **नहिब**—नहीं होऊँगा; **उदास**—उदासीन, विरक्त।

अनुवाद

"जाने या अनजाने मैंने यह संन्यास स्वीकार किया है। फिर भी मैं आपसे कभी विमुख नहीं होऊँगा।"

তুমি যাহাঁ কহ, আমি তাহাঙি রহিব ।
তুমি যেই আজ্ঞা কর, সেই ত' করিব ॥১৪৮॥

तुमि य़ाहाँ कह, आमि ताहाङि रहिब ।
तुमि य़ेइ आज्ञा कर, सेइ त' करिब ॥ १४८ ॥

तुमि—आप; **य़ाहाँ**—जहाँ कहीं भी; **कह**—कहो; **आमि**—मैं; **ताहाङि**—वहाँ; **रहिब**—रहूँगा; **तुमि**—आप; **य़ेइ**—जो कुछ; **आज्ञा**—आज्ञा; **कर**—करोगी; **सेइ**—वह; **त'**—निश्चित रूप से; **करिब**—मैं करूँगा।

अनुवाद

"हे माता, आप मुझे जहाँ भी रहने के लिए कहेंगी, मैं वहीं रहूँगा और आप जो भी आज्ञा देंगी, उसका मैं पालन करूँगा।"

এত বলি' পুনঃ পুনঃ করে নমস্কার ।
তুষ্ট হঞা আই কোলে করে বার বার ॥ ১৪৯॥

एत बलि' पुनः पुनः करे नमस्कार ।
तुष्ट हञा आइ कोले करे बार बार ॥ १४९ ॥

एत बलि'—यह कहकर; **पुनः पुनः**—बार बार; **करे**—किया; **नमस्कार**—नमस्कार; **तुष्ट हञा**—प्रसन्न होकर; **आइ**—माता शची; **कोले**—गोद में; **करे**—लेती हैं; **बार बार**—बारम्बार।

अनुवाद

यह कहकर महाप्रभु ने अपनी माता को बारम्बार प्रणाम किया। शचीमाता ने भी उनसे प्रसन्न होकर उन्हें बारम्बार अपनी गोद में लिया।

তবে আই লঞা আচার্য গেলা অভ্যন্তর ।
ভক্ত-গণ মিলিতে প্রভু হইলা সত্বর ॥ ১৫০॥

तबे आइ लञा आचार्य्य गेला अभ्यन्तर ।
भक्त-गण मिलिते प्रभु हइला सत्वर ॥ १५० ॥

तबे—तत्पश्चात्; **आइ**—माता को; **लञा**—लेकर; **आचार्य्य**—अद्वैत आचार्य; **गेला**—प्रविष्ट हुए; **अभ्यन्तर**—घर के भीतर; **भक्त-गण**—सभी भक्तगण को; **मिलिते**—मिलने के लिए; **प्रभु**—महाप्रभु; **हइला**—हो गये; **सत्वर**—शीघ्र।

अनुवाद

तत्पश्चात् अद्वैत आचार्य शचीमाता को घर के भीतर ले गये। महाप्रभु तुरन्त ही सारे भक्तों से मिलने के लिए तैयार हो गये।

একে একে মিলিল প্রভু সব ভক্ত-গণ ।
সবার মুখ দেখি' করে দৃঢ় আলিঙ্গন ॥১৫১॥

एके एके मिलिल प्रभु सब भक्त-गण ।
सबार मुख देखि' करे दृढ़ आलिङ्गन ॥ १५१ ॥

एके एके—एक एक करके; **मिलिल**—मिले; **प्रभु**—महाप्रभु; **सब**—सब; **भक्त-गण**—भक्तों को; **सबार**—प्रत्येक का; **मुख**—मुख; **देखि'**—देखकर; **करे**—किया; **दृढ़**—जोर से; **आलिङ्गन**—आलिंगन।

अनुवाद

महाप्रभु एक-एक करके सारे भक्तों से मिले और हर एक के मुख को देखकर उन्होंने उसका दृढ़तापूर्वक आलिंगन किया।

কেশ না দেখিয়া ভক্ত যদ্যপি পায় দুঃখ ।
সৌন্দর্য দেখিতে তবু পায় মহা-সুখ ॥১৫২॥

केश ना देखिया भक्त यद्यपि पाय दुःख ।
सौन्दर्य्य देखिते तबु पाय महा-सुख ॥ १५२ ॥

केश—बाल; **ना देखिया**—न देखकर; **भक्त**—भक्तों ने; **यद्यपि**—यद्यपि; **पाय**—पाया; **दुःख**—दुःख; **सौन्दर्य्य**—सुन्दरता; **देखिते**—देखकर; **तबु**—तथापि; **पाय**—पाया; **महा-सुख**—अत्यन्त सुख।

अनुवाद

यद्यपि भक्तगण महाप्रभु के बालों को न देखकर दुःखी थे, फिर भी उनके सौन्दर्य को देखकर परम सुख प्राप्त कर रहे थे।

শ্রীবাস, রামাই, বিদ্যানিধি, গদাধর ।
গঙ্গাদাস, বক্রেশ্বর, মুরারি, শুক্লাম্বর ॥১৫৩॥

বুদ্ধিমন্ত খাঁ, নন্দন, শ্রীধর, বিজয় ।
বাসুদেব, দামোদর, মুকুন্দ, সঞ্জয় ॥১৫৪॥
কত নাম লইব যত নবদ্বীপ-বাসী ।
সবারে মিলিলা প্রভু কৃপা-দৃষ্ট্যে হাসি' ॥১৫৫॥

श्रीवास, रामाइ, विद्यानिधि, गदाधर ।
गङ्गादास, वक्रेश्वर, मुरारि, शुक्लाम्बर ॥ १५३ ॥
बुद्धिमन्त खाँ, नन्दन, श्रीधर, विजय ।
वासुदेव, दामोदर, मुकुन्द, सञ्जय ॥ १५४ ॥
कत नाम लइब ग्रत नवद्वीप-वासी ।
सबारे मिलिला प्रभु कृपा-दृष्ट्ये हासि' ॥ १५५ ॥

श्रीवास—श्रीवास; **रामाइ**—रामाई; **विद्यानिधि**—विद्यानिधि; **गदाधर**—गदाधर; **गङ्गादास**—गंगादास; **वक्रेश्वर**—वक्रेश्वर; **मुरारि**—मुरारि; **शुक्लाम्बर**—शुक्लाम्बर; **बुद्धिमन्त खाँ**—बुद्धिमन्त खां; **नन्दन**—नन्दन; **श्रीधर**—श्रीधर; **विजय**—विजय; **वासुदेव**—वासुदेव; **दामोदर**—दामोदर; **मुकुन्द**—मुकुन्द; **सञ्जय**—संजय; **कत नाम**—कितने नाम; **लइब**—मैं लूँ; **ग्रत**—सभी; **नवद्वीप-वासी**—नवद्वीप के निवासी; **सबारे**—सब से; **मिलिला**—मिले; **प्रभु**—महाप्रभु; **कृपा-दृष्ट्ये**—कृपा दृष्टि से; **हासि'**—मुस्कुराकर।

अनुवाद

श्रीवास, रामाइ, विद्यानिधि, गदाधर, गंगादास, वक्रेश्वर, मुरारि, शुक्लाम्बर, बुद्धिमन्त खां, नन्दन, श्रीधर, विजय, वासुदेव, दामोदर, मुकुन्द, संजय तथा अन्य जितने भी नाम मैं गिना सकूँ—सभी नवद्वीप के निवासी वहाँ आये और महाप्रभु सब पर कृपा दृष्टि डालते हुए तथा मुस्कुराते हुए उनसे मिले।

আনন্দে নাচয়ে সবে বলি' 'হরি' 'হরি' ।
আচার্য-মন্দির হৈল শ্রী-বৈকুণ্ঠ-পুরী ॥১৫৬॥

आनन्दे नाचये सबे बलि' 'हरि' 'हरि' ।
आचार्य्य-मन्दिर हैल श्री-वैकुण्ठ-पुरी ॥ १५६ ॥

आनन्दे—आनन्द में; **नाचये**—नाचते हैं; **सबे**—सब; **बलि'**—कहकर; **हरि हरि**—भगवान् का पवित्र नाम "हरि हरि"; **आचार्य्य-मन्दिर**—अद्वैत आचार्य का घर; **हैल**—हो गया; **श्री-वैकुण्ठ-पुरी**—आध्यात्मिक वैकुण्ठ धाम।

अनुवाद

हर कोई पवित्र हरिनाम का कीर्तन करते हुए नाच रहा था। इस तरह अद्वैत आचार्य का निवास-स्थान श्री वैकुण्ठपुरी में बदल गया था।

যত লোক আইল মহাপ্রভুকে দেখিতে ।
নানা-গ্রাম হৈতে, আর নবদ্বীপ হৈতে ॥১৫৭॥

य़त लोक आइल महाप्रभुके देखिते ।
नाना-ग्राम हैते, आर नवद्वीप हैते ॥ १५७॥

य़त लोक—सभी लोग; **आइल**—आये; **महाप्रभुके**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **देखिते**—देखने के लिए; **नाना-ग्राम हैते**—नाना गाँवों से; **आर**—और; **नवद्वीप हैते**—नवद्वीप से।

अनुवाद

नवद्वीप के अतिरिक्त आसपास के अन्य विभिन्न गाँवों के भी लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन हेतु आये।

সবাকারে বাসা দিল—ভক্ষ্য, অন্ন-পান ।
বহু-দিন আচার্য-গোসাঞি কৈল সমাধান ॥১৫৮॥

सबाकारे वासा दिल—भक्ष्य, अन्न-पान ।
बहु-दिन आचार्य्य-गोसाञि कैल समाधान ॥ १५८॥

सबाकारे—उन सबको; **वासा दिल**—निवासस्थान दिये; **भक्ष्य**—भोजन सामग्री; **अन्न-पान**—भोजन और पेय; **बहु-दिन**—बहुत दिनों तक; **आचार्य्य-गोसाञि**—अद्वैत आचार्य ने; **कैल**—किया; **समाधान**—प्रबन्ध।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु का दर्शन करने के लिए निकट के गाँवों से आये हर व्यक्ति को, विशेषतया नवद्वीप के निवासियों को कई दिनों तक रहने के लिए स्थान और सभी प्रकार की खाद्य सामग्री प्रदान की। उन्होंने हर बात का अच्छी तरह प्रबन्ध किया।

আচার্য-গোসাঞির ভাণ্ডার—অক্ষয়, অব্যয় ।
যত দ্রব্য ব্যয় করে তত দ্রব্য হয় ॥১৫৯॥

आचार्य-गोसाञिर भाण्डार—अक्षय, अव्यय ।
यत द्रव्य व्यय करे तत द्रव्य हय ॥ १५९ ॥

आचार्य-गोसाञिर—अद्वैत आचार्य का; **भाण्डार**—गोदाम; **अक्षय**—अक्षय, न समाप्त होनेवाला; **अव्यय**—नष्ट न होनेवाला; **यत**—सब; **द्रव्य**—द्रव्य, सामग्री; **व्यय**—खर्च; **करे**—करते; **तत**—उतनी अधिक; **द्रव्य**—सामग्री; **हय**—भर जाती।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य का भण्डार अक्षय तथा अटूट था। वे जितनी भी सामग्री का उपयोग करते, उतनी ही सामग्री फिर से प्रकट हो आती।

সেই দিন হৈতে শচী করেন রন্ধন ।
ভক্ত-গণ লঞা প্রভু করেন ভোজন ॥ ১৬০ ॥

सेइ दिन हैते शची करेन रन्धन ।
भक्त-गण लञा प्रभु करेन भोजन ॥ १६० ॥

सेइ दिन हैते—उस दिन से; **शची**—माता शची; **करेन**—करतीं; **रन्धन**—पकाना; **भक्त-गण**—सभी भक्त; **लञा**—के साथ; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **करेन**—करते; **भोजन**—भोजन।

अनुवाद

जिस दिन से शचीमाता अद्वैत आचार्य के घर आईं, वे ही भोजन पकाती थीं और श्री चैतन्य महाप्रभु सारे भक्तों के साथ भोजन करते थे।

দিনে আচার্যের প্রীতি—প্রভুর দর্শন ।
রাত্রে লোক দেখে প্রভুর নর্তন-কীর্তন ॥ ১৬১ ॥

दिने आचार्येर प्रीति—प्रभुर दर्शन ।
रात्रे लोक देखे प्रभुर नर्तन-कीर्तन ॥ १६१ ॥

दिने—दिन के समय; **आचार्येर प्रीति**—अद्वैत आचार्य का प्रेम-व्यवहार; **प्रभुर दर्शन**—चैतन्य महाप्रभु के दर्शन; **रात्रे**—रात को; **लोक**—सभी लोग; **देखे**—देखते; **प्रभुर**—महाप्रभु का; **नर्तन-कीर्तन**—नर्तन और कीर्तन।

अनुवाद

दिन में जितने सारे लोग वहाँ आते थे, वे श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करते थे और अद्वैत आचार्य के प्रेमपूर्ण व्यवहार को देखते थे। रात्रि

में उन्हें महाप्रभु का नृत्य देखने और उनका कीर्तन सुनने का अवसर प्राप्त होता था।

কীর্তন করিতে প্রভুর সর্ব-ভাবোদয় ।
স্তম্ভ, কম্প, পুলকাশ্রু, গদগদ, প্রলয় ॥১৬২॥

कीर्तन करिते प्रभुर सर्व-भावोदय ।
स्तम्भ, कम्प, पुलकाश्रु, गद्गद, प्रलय ॥ १६२ ॥

कीर्तन करिते—कीर्तन करते समय; **प्रभुर**—महाप्रभु में; **सर्व**—सभी; **भाव-उदय**—भाव लक्षणों का प्रकट होना; **स्तम्भ**—स्तम्भित होना; **कम्प**—कंपन; **पुलक**—रोमांच; **अश्रु**—अश्रु; **गद्गद**—आवाज का लड़खड़ाना; **प्रलय**—प्रलय।

अनुवाद

कीर्तन करते समय महाप्रभु में सभी प्रकार के दिव्य लक्षण प्रकट हो जाते थे। वे स्तम्भित एवं कम्पित लगते, उन्हें रोमांच हो जाता और उनकी वाणी अवरुद्ध हो जाती। आंसुओं के साथ प्रलय प्रकट हो जाती।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु में प्रलय को सुख और दु:ख का ऐसा मेल बताया गया है, जो सभी इन्द्रियों के जड़ हो जाने पर प्रकट होता है। ऐसी दशा में भक्त भूमि पर गिर पड़ता है और शरीर में अन्य लक्षण उत्पन्न होते हैं। ये लक्षण ऊपर वर्णित हैं और जब शरीर में इनकी प्रधानता हो जाती है, तो प्रलय अवस्था प्रकट होती है।

ক্ষণে ক্ষণে পড়ে প্রভু আছাড় খাঞা ।
দেখি' শচীমাতা কহে রোদন করিয়া ॥১৬৩॥

क्षणे क्षणे पड़े प्रभु आछाड़ खाञा ।
देखि' शचीमाता कहे रोदन करिया ॥ १६३ ॥

क्षणे क्षणे—बार बार; **पड़े**—गिरते; **प्रभु**—महाप्रभु; **आछाड़ खाञा**—पछाड़ खाकर; **देखि'**—देखकर; **शची-माता**—शची माता; **कहे**—कहतीं; **रोदन करिया**—रोकर।

अनुवाद

महाप्रभु रह-रहकर पछाड़ खाकर भूमि पर गिर पड़ते थे। यह देखकर उनकी माता शची रोने लगतीं।

চূর্ণ হৈল, হেন বাসোঁ নিমাঞি-কলেবর ।
হা-হা করি' বিষ্ণু-পাশে মাগে এই বর ॥ ১৬৪॥

चूर्ण हैल, हेन वासों निमाञि-कलेवर ।
हा-हा करि' विष्णु-पाशे मागे एइ वर ॥ १६४॥

चूर्ण—चूर-चूर होना; **हैल**—हो गया है; **हेन**—अतः; **वासों**—मैं सोचती हूँ; **निमाञि-कलेवर**—निमाइ का शरीर; **हा-हा करि'**—जोर से हाहाकार कर; **विष्णु-पाशे**—भगवान् विष्णु से; **मागे**—मांगतीं; **एइ**—यह; **वर**—आशीर्वाद।

अनुवाद

श्रीमती शचीमाता ने सोचा कि इस तरह भूमि पर गिरने से निमाइ का शरीर चूर-चूर हो रहा होगा, अतएव वे चित्कार कर उठीं, "हाय" और फिर भगवान् विष्णु से वर माँगने लगीं।

বাল্য-কাল হৈতে তোমার যে কৈলুঁ সেবন ।
তার এই ফল মোরে দেহ নারায়ণ ॥ ১৬৫॥

बाल्य-काल हैते तोमार ये कैलुँ सेवन ।
तार एइ फल मोरे देह नारायण ॥ १६५॥

बाल्य-काल हैते—बचपन से; **तोमार**—आपकी; **ये**—जो कुछ; **कैलुँ**—मैंने की है; **सेवन**—सेवा; **तार**—उसका; **एइ फल**—यह फल; **मोरे**—मुझे; **देह**—कृपया दो; **नारायण**—हे नारायण।

अनुवाद

"हे प्रभु, मैंने अपने बचपन से लेकर आज तक आपकी जो भी सेवा की है, उसके बदले में कृपा करके मुझे यह वर दें।

যে কালে নিমাঞি পড়ে ধরণী-উপরে ।
ব্যথা যেন নাহি লাগে নিমাঞি-শরীরে ॥ ১৬৬॥

ये काले निमाञि पड़े धरणी-उपरे ।
व्यथा येन नाहि लागे निमाञि-शरीरे ॥ १६६ ॥

ये काले—जब कभी; **निमाञि**—मेरा पुत्र निमाइ; **पड़े**—गिरे; **धरणी-उपरे**—धरती पर; **व्यथा**—दर्द; **येन**—जैसे; **नाहि**—नहीं; **लागे**—लगे; **निमाञि-शरीरे**—मेरे पुत्र निमाइ के शरीर को।

अनुवाद

"जब-जब निमाइ धरती पर गिरे, तब-तब उसे पीड़ा का अनुभव न हो।"

এই-মত শচীদেবী বাৎসল্যে বিহ্বল ।
হর্ষ-ভয়-দৈন্য-ভাবে হইল বিকল ॥ ১৬৭ ॥

एइ-मत शचीदेवी वात्सल्ये विह्वल ।
हर्ष-भय-दैन्य-भावे हइल विकल ॥ १६७ ॥

एइ-मत—इस प्रकार; **शची-देवी**—माता शची; **वात्सल्ये**—वात्सल्य प्रेम में; **विह्वल**—विह्वल; **हर्ष**—हर्ष; **भय**—भय; **दैन्य-भावे**—और विनय में; **हइल**—हो गईं; **विकल**—व्याकुल।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति वात्सल्य-प्रेम से अभिभूत होने पर शचीमाता हर्ष, भय तथा दीनता से विह्वल और साथ ही शारीरिक भाव-लक्षणों से युक्त हो गईं।

तात्पर्य

ये श्लोक बतलाते हैं कि नीलाम्बर चक्रवर्ती के परिवार में जन्मी शचीमाता अपने विवाह के पहले से ही भगवान् विष्णु की पूजा करती थीं। जैसाकि *भगवद्गीता* (६.४१) में कहा गया है :

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥

"पुण्यात्माओं के लोकों में अनेकानेक वर्षों तक भोग करने के बाद भ्रष्ट योगी या तो पुण्यात्माओं के परिवार में या धनी परिवार में जन्म लेता है।" शचीमाता *नित्यसिद्ध* जीव हैं तथा माता यशोदा की अवतार हैं। वे नीलाम्बर चक्रवर्ती के

घर में जन्मीं और निरन्तर भगवान् विष्णु की सेवा में लगी रहीं। बाद में उन्हें भगवान् विष्णु-रूप चैतन्य महाप्रभु पुत्ररूप में प्राप्त हुए और वे उनके प्राकट्य दिवस से ही उनकी सेवा करती रहीं। नित्यसिद्ध पार्षदों की ऐसी स्थिती होती है। इसलिए नरोत्तमदास ठाकुर ने गाया है, *गौराङ्गेर सङ्गिगणे नित्यसिद्ध करि माने।* हर भक्त को यह जान लेना चाहिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे पार्षद—उनके परिजन, मित्र आदि सभी नित्यसिद्ध थे। नित्यसिद्ध व्यक्ति भगवान् की सेवा को कभी नहीं भूलता। वह सदैव, यहाँ तक कि अपने बाल्यकाल से, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा में लगा रहता है।

শ্রীবাসাদি যত প্রভুর বিপ্র ভক্ত-গণ ।
প্রভুকে ভিক্ষা দিতে হৈল সবাকার মন ॥ ১৬৮॥

श्रीवासादि य़त प्रभुर विप्र भक्त-गण ।
प्रभुके भिक्षा दिते हैल सबाकार मन ॥ १६८ ॥

श्रीवास-आदि—श्रीवास ठाकुर आदि भक्त; **य़त**—सभी; **प्रभुर**—महाप्रभु के; **विप्र**—विशेषतया ब्राह्मण; **भक्त-गण**—भक्तगण; **प्रभुके**—महाप्रभु को; **भिक्षा**—भोजन, दोपहर का खाना; **दिते**—देने के लिए; **हैल**—था; **सबाकार**—उन सबका; **मन**—मन।

अनुवाद

चूँकि अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को भिक्षा तथा भोजन देते थे, अतएव श्रीवास ठाकुर आदि अन्य भक्त भी उन्हें भिक्षा देने और भोजन के लिए आमन्त्रित करना चाह रहे थे।

तात्पर्य

यह समस्त गृहस्थों का धर्म है कि यदि कोई संन्यासी उनके पड़ोस में या गाँव में हो, तो वे उसे अपने घर आमन्त्रित करें। भारत में आज भी यह प्रथा चालू है। यदि कोई संन्यासी किसी गाँव में आता है, तो सारे गृहस्थ बारी-बारी से उसे आमन्त्रित करते हैं। जब तक वह संन्यासी गाँव में रहता है, वह गाँव वालों को आध्यात्मिक ज्ञान देता है। दूसरे शब्दों में, संन्यासी को दूर-दूर तक यात्रा करते हुए भी रहने या खाने की समस्या नहीं सताती। यद्यपि अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रसाद की पूर्ति कर रहे थे, फिर भी नवद्वीप तथा शान्तिपुर के अन्य भक्त भी उन्हें प्रसाद देने के लिए इच्छुक थे।

শুনি' শচী সবাকারে করিল মিনতি ।
নিমাঞির দরশন আর মুঞি পাব কতি ॥১৬৯॥

शुनि' शची सबाकारे करिल मिनति ।
निमाञिर दरशन आर मुञि पाब कति ॥ १६९ ॥

शुनि'—यह सुनकर; **शची**—माता शची ने; **सबाकारे**—उन सबको; **करिल**—किया; **मिनति**—निवेदन; **निमाञिर**—श्री चैतन्य महाप्रभु (निमाइ) का; **दरशन**—दर्शन; **आर**—और; **मुञि**—मैं; **पाब**—पाऊँगी; **कति**—और कितनी बार।

अनुवाद

महाप्रभु के अन्य भक्तों द्वारा ऐसे प्रस्तावों को सुनकर शचीमाता ने भक्तों से कहा, "अब मुझे निमाइ के दर्शन पाने के कितने अवसर हाथ लगेंगे?"

তোমা-সবা-সনে হবে অন্যত্র মিলন ।
মুঞি অভাগিনীর মাত্র এই দরশন ॥১৭০॥

तोमा-सबा-सने हबे अन्यत्र मिलन ।
मुञि अभागिनीर मात्र एइ दरशन ॥ १७० ॥

तोमा-सबा-सने—आप सबके साथ; **हबे**—होगा; **अन्यत्र**—अन्य स्थान पर; **मिलन**—मिलन; **मुञि**—मैं; **अभागिनीर**—मुझ अभागिन का; **मात्र**—मात्र; **एइ**—यह; **दरशन**—दर्शन, मिलन।

अनुवाद

शचीमाता ने निवेदन किया, "जहाँ तक आप लोगों की बात है, आप निमाइ अर्थात् श्री चैतन्य महाप्रभु से अन्यत्र भी अनेक बार मिल सकते हो, किन्तु मेरे लिए उससे दोबारा मिलने की क्या सम्भावना है? मुझे तो घर पर रहना होगा। संन्यासी कभी अपने घर वापस नहीं आता।"

যাবতাচার্য-গৃহে নিমাঞির অবস্থান ।
মুঞি ভিক্ষা দিমু, সবাকারে মাগোঁ দান ॥১৭১॥

य़ावताचार्य-गृहे निमाञिर अवस्थान ।
मुञि भिक्षा दिमु, सबाकारे मागों दान ॥ १७१ ॥

य़ावत्—जब तक; **आचार्य-गृहे**—अद्वैत आचार्य के घर में; **निमाञिर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **अवस्थान**—निवास; **मुञि**—मैं; **भिक्षा दिमु**—भोजन दूँ; **सबाकारे**—सबसे; **मागों**—मैं प्रार्थना करती हूँ; **दान**—इस दान के लिए।

अनुवाद

शचीमाता ने सभी भक्तों से यह दान माँगा, "जब तक श्री चैतन्य महाप्रभु अद्वैत आचार्य के घर में रहें, केवल वे ही उन्हें भोजन प्रदान करेंगी।

শুনি' ভক্ত-গণ কহে করি' নমস্কার ।
মাতার যে ইচ্ছা সেই সম্মত সবার ॥ ১৭২॥

शुनि' भक्त-गण कहे करि' नमस्कार ।
मातार य़े इच्छा सेइ सम्मत सबार ॥ १७२ ॥

शुनि'—यह सुनकर; **भक्त-गण**—सभी भक्त; **कहे**—कहने लगे; **करि'**—करके; **नमस्कार**—नमस्कार; **मातार**—माता शचीदेवी की; **य़े इच्छा**—जैसी इच्छा; **सेइ**—वह; **सम्मत**—स्वीकार है; **सबार**—सभी भक्तों को।

अनुवाद

शचीमाता का यह निवेदन सुनकर सारे भक्तों ने उन्हें नमस्कार करते हुए कहा, "हम सभी लोग शचीमाता की इच्छा से सहमत हैं।"

মাতার ব্যগ্রতা দেখি' প্রভুর ব্যগ্র মন ।
ভক্ত-গণ একত্র করি' বলিলা বচন ॥ ১৭৩॥

मातार व्यग्रता देखि' प्रभुर व्यग्र मन ।
भक्त-गण एकत्र करि' बलिला वचन ॥ १७३ ॥

मातार—माता की; **व्यग्रता**—उत्सुकता; **देखि'**—देखकर; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **व्यग्र**—व्याकुल; **मन**—मन; **भक्त-गण**—सभी भक्तों को; **एकत्र करि'**—इकट्ठे करके; **बलिला**—कहे; **वचन**—वचन।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता की महान् उत्सुकता देखी, तो

वे कुछ विचलित हुए। अतएव उन्होंने वहाँ उपस्थित सारे भक्तों को एकत्र किया और उनसे बोले।

তোমা-সবার আজ্ঞা বিনা চলিলাম বৃন্দাবন ।
যাইতে নারিল, বিঘ্ন কৈল নিবর্তন ॥ ১৭৪ ॥

तोमा-सबार आज्ञा विना चलिलाम वृन्दावन ।
ग्राइते नारिल, विघ्न कैल निवर्तन ॥ १७४ ॥

तोमा-सबार—आप सबकी; **आज्ञा**—आज्ञा; **विना**—बिना; **चलिलाम**—मैं चला गया; **वृन्दावन**—वृन्दावन को; **ग्राइते नारिल**—नहीं जा सका; **विघ्न**—कुछ विघ्न; **कैल**—हो गया; **निवर्तन**—लौट आया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबको बतलाया, "मैं आप लोगों की आज्ञा लिये बिना वृन्दावन जाना चाह रहा था। किन्तु कुछ बाधा उत्पन्न हुई और मुझे लौटना पड़ा।

যদ্যপি সহসা আমি করিয়াছি সন্ন্যাস ।
তথাপি তোমা-সবা হৈতে নহিব উদাস ॥ ১৭৫ ॥

ग्रद्यपि सहसा आमि करियाछि सन्न्यास ।
तथापि तोमा-सबा हैते नहिब उदास ॥ १७५ ॥

ग्रद्यपि—यद्यपि; **सहसा**—अचानक; **आमि**—मैंने; **करियाछि सन्न्यास**—संन्यास ले लिया; **तथापि**—तथापि; **तोमा-सबा**—आप सब; **हैते**—से; **नहिब**—मैं कभी नहीं होऊँगा; **उदास**—उदासीन।

अनुवाद

"हे मित्रों, यद्यपि मैंने अचानक ही यह संन्यास ग्रहण कर लिया है, किन्तु मैं जानता हूँ कि तब भी मैं आप लोगों से कभी उदासीन नहीं होऊँगा।"

তোমা-সব না ছাড়িব, যাবতামি জীব' ।
মাতারে তাবতামি ছাড়িতে নারিব ॥ ১৭৬ ॥

तोमा-सब ना छाड़िब, ग्रावतामि जीब' ।
मातारे तावतामि छाड़िते नारिब ॥ १७६ ॥

तोमा-सब—आप सबको; **ना**—नहीं; **छाड़िब**—मैं छोडूंगा; **ग्रावत्**—जब तक; **आमि**—मैं; **जीब**—जीवित रहूँगा; **मातारे**—माता; **तावत्**—तब तक; **आमि**—मैं; **छाड़िते**—छोड़; **नारिब**—नहीं सकूंगा।

अनुवाद

"मेरे प्रिय मित्रों, जब तक मैं जीवित रहूँगा, आप लोगों को कभी नहीं छोडूँगा। न ही मैं अपनी माता को छोड़ पाऊँगा।

সন্ন্যাসীর ধর্ম নহে—সন্ন্যাস করিঞা ।
নিজ জন্ম-স্থানে রহে কুটুম্ব লঞা ॥ ১৭৭॥

सन्न्यासीर धर्म नहे—सन्न्यास करिञा ।
निज जन्म-स्थाने रहे कुटुम्ब लञा ॥ १७७॥

सन्न्यासीर—संन्यासी का; **धर्म**—धर्म; **नहे**—यह नहीं है; **सन्न्यास**—संन्यास; **करिञा**—लेकर; **निज**—अपने; **जन्म-स्थाने**—जन्म स्थान पर; **रहे**—रहे; **कुटुम्ब**—परिवार; **लञा**—के साथ।

अनुवाद

"संन्यास स्वीकार करने के बाद संन्यासी का यह धर्म नहीं होता कि वह अपने जन्मस्थान में रहे और अपने कुटुम्बियों से घिरा रहे।

কেহ যেন এই বলি' না করে নিন্দন ।
সেই যুক্তি কহ, যাতে রহে দুই ধর্ম ॥ ১৭৮॥

केह ग्रेन एइ बलि' ना करे निन्दन ।
सेइ ग्रुक्ति कह, ग्राते रहे दुइ धर्म ॥ १७८ ॥

केह—कोई भी; **ग्रेन**—ऐसा; **एइ**—यह; **बलि'**—कथन; **ना करे**—नहीं करे; **निन्दन**—निन्दा करे; **सेइ**—वह; **ग्रुक्ति**—विचार; **कह**—मुझे बताओ; **ग्राते**—जिससे; **रहे**—रहे; **दुइ**—दोनों; **धर्म**—धर्म (कर्तव्य)।

अनुवाद

"अतएव कुछ ऐसा प्रबन्ध करो, जिससे मैं आप लोगों को न छोडूँ

और लोग मुझ पर संन्यास लेने के बाद सम्बन्धियों के साथ रहने का लांछन भी न लगा सकें।"

শুনিয়া প্রভুর এই মধুর বচন ।
শচী-পাশ আচার্যাদি করিল গমন ॥১৭৯॥

शुनिया प्रभुर एइ मधुर वचन ।
शची-पाश आचार्य्यादि करिल गमन ॥ १७९ ॥

शुनिया—यह सुनकर; **प्रभुर**—महाप्रभु के; **एइ**—यह; **मधुर**—मधुर; **वचन**—वचन; **शची-पाश**—माता शची के सामने; **आचार्य्य-आदि**—अद्वैत आचार्य तथा अन्य भक्त; **करिल**—किया; **गमन**—गमन।

अनुवाद

महाप्रभु के वचन सुनकर अद्वैत आचार्य आदि सारे भक्त शचीमाता के पास गये।

প্রভুর নিবেদন তাঁরে সকল কহিল ।
শুনি' শচী জগন্মাতা কহিতে লাগিল ॥১৮০॥

प्रभुर निवेदन ताँरे सकल कहिल ।
शुनि' शची जगन्माता कहिते लागिल ॥ १८० ॥

प्रभुर—महाप्रभु का; **निवेदन**—निवेदन; **ताँरे**—उनको; **सकल**—सब; **कहिल**—बताया; **शुनि'**—यह सुनकर; **शची**—माता शची; **जगत्-माता**—जगत् माता; **कहिते**—कहने; **लागिल**—लगीं।

अनुवाद

जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के वचन कहे, तो अखिल विश्व की माता शची कहने लगीं।

তেঁহো যদি ইহাঁ রহে, তবে মোর সুখ ।
তাঁ'র নিন্দা হয় যদি, সেহ মোর দুঃখ ॥১৮১॥

तेंहो य़दि इहाँ रहे, तबे मोर सुख ।
ताँ'र निन्दा हय य़दि, सेह मोर दुःख ॥ १८१ ॥

तेंहो—चैतन्य महाप्रभु; **यदि**—यदि; **इहाँ**—यहाँ; **रहे**—रहते हैं; **तबे**—तब; **मोर**—मुझे; **सुख**—सुख; **ताँ'र निन्दा**—उनकी निन्दा; **हय**—होगी; **यदि**—यदि; **सेह**—वह भी; **मोर**—मेरा; **दुःख**—दुःख।

अनुवाद

शचीमाता ने कहा, "यह मेरे लिए परम सुख की बात होगी यदि निमाइ (श्री चैतन्य महाप्रभु) यहाँ रहता है। किन्तु यदि कोई उसकी निन्दा करे तो यह मेरे लिए अत्यन्त दुःख की बात होगी।"

तात्पर्य

एक माता के लिए यह अत्यन्त सुख की बात होती है, यदि उसका बेटा कृष्ण की खोज में गृहत्याग किये बिना उसके साथ रहे। साथ ही, यदि बेटा कृष्ण की खोज न करके घर पर ही रहता है, तो अनुभवी सन्त पुरुष उसकी निन्दा करते हैं। ऐसी निन्दा माता के लिए अतीव दुःखद होती है। यदि अच्छी माता वास्तव में चाहती है कि उसका बेटा आध्यात्मिक उन्नति करे, तो श्रेयस्कर यही होगा कि वह उसे कृष्ण की खोज करने की अनुमति प्रदान कर दे। माता स्वाभाविक रूप से अपने बेटे का कल्याण चाहती है। यदि माता अपने बेटे को कृष्ण की खोज करने की अनुमति नहीं देती, तो वह *मा* कहलाती है, जिसका अर्थ होता है *माया।* शचीमाता अपने बेटे को संन्यासी बनने तथा कृष्ण की खोज करने की अनुमति देकर विश्व-भर की माताओं को शिक्षा दे रही हैं। वे इंगित करती हैं कि सारे बेटों को कृष्ण का शुद्ध भक्त बनना चाहिए और उन्हें अपनी वात्सल्यमयी माता के संरक्षण में घर पर ही नहीं रहना चाहिए। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* (५.५.१८) से होती है :

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्
न मोचयेद्यः समुपेत-मृत्युम्॥

"यदि व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को आसन्न मृत्यु के मार्ग से बचने में सहायक नहीं बन सकता, तो उसे न तो गुरु बनना चाहिए, न परिजन, न पिता, न माता, न पूजनीय अर्चाविग्रह, न पति।" प्रत्येक जीव कर्म-फल के अधीन होकर इस

ब्रह्माण्ड में घूमता रहता है और एक शरीर से दूसरे में तथा एक लोक से दूसरे लोक में देहान्तरण करता है। इसलिए पूरी वैदिक विधि भ्रमणशील जीवों को *माया*—जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि के बन्धन से बचाने के निमित्त है। इसका अर्थ है जन्म-मृत्यु के चक्र को रोकना। यह चक्र तभी रुक सकता है जब कोई कृष्ण की पूजा करता है। जैसाकि भगवान् ने *भगवद्गीता* (४.९) में कहा है :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत:।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"जो मेरे जन्म और कर्म की दिव्य प्रकृति को जानता है, हे अर्जुन, वह अपना शरीर त्यागने के बाद इस भौतिक जगत् में फिर से जन्म नहीं लेता, अपितु मेरे सनातन धाम को प्राप्त करता है।"

जन्म-मृत्यु का चक्र रोकने के लिए कृष्ण को यथारूप जानना आवश्यक है। कृष्ण को जान लेने मात्र से ही इस भौतिक जगत् में पुनर्जन्म को रोका जा सकता है। कृष्णभावनाभावित होकर कर्म करने से भगवान् के धाम लौटकर जाया जा सकता है। माता, पिता, गुरु, पति या अन्य परिजनों के लिए जीवन की चरम सिद्धि यही है कि वे अन्यों को भगवद्धाम वापस जाने में सहायक हों। परिजनों के लाभ के लिए यह सर्वोत्कृष्ट कल्याण-कार्य है। इसीलिए शचीमाता ने, निमाइ पंडित अर्थात् श्री चैतन्य महाप्रभु की माता होते हुए भी, इन सारे तथ्यों पर विचार करके अपने बेटे को कृष्ण की खोज में बाहर जाने की अनुमति देने का निश्चय किया। उसी के साथ ही, उन्होंने ऐसी व्यवस्था भी कर दी कि उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे कार्यकलापों के समाचार मिलते रहें।

তাতে এই যুক্তি ভাল, মোর মনে লয় ।
নীলাচলে রহে যদি, দুই কার্য হয় ॥১৮২॥

ताते एइ य़ुक्ति भाल, मोर मने लय ।
नीलाचले रहे य़दि, दुइ कार्य़ हय ॥ १८२ ॥

ताते—अत:; **एइ**—यह; **य़ुक्ति**—विचार; **भाल**—अच्छा है; **मोर**—मेरा; **मने**—मन; **लय**—मानता है; **नीलाचले**—जगन्नाथ पुरी में; **रहे**—वह रहे; **य़दि**—यदि; **दुइ**—दोनो; **कार्य़**—उद्देश्य; **हय**—पूर्ण हो जाते हैं।

अनुवाद

शचीमाता ने कहा, "यह अच्छा विचार है। मेरे विचार से यदि निमाइ जगन्नाथ पुरी में रहे, तो वह हममें से किसी को छोड़ेगा भी नहीं और उसी के साथ-साथ वह संन्यासी के रूप में अलग भी रह सकता है। इस तरह दोनों उद्देश्य पूरे हो जायेंगे।

নীলাচলে নবদ্বীপে যেন দুই ঘর ।
লোক-গতাগতি-বার্তা পাব নিরন্তর ॥১৮৩॥

नीलाचले नवद्वीपे ग्रेन दुइ घर ।
लोक-गतागति-वार्ता पाब निरन्तर ॥ १८३॥

नीलाचले—जगन्नाथ पुरी में; **नवद्वीपे**—और नवद्वीप में; **ग्रेन**—जैसे; **दुइ**—दो; **घर**—कमरे; **लोक**—लोग; **गतागति**—आते जाते हैं; **वार्ता**—समाचार; **पाब**—मुझे मिलेंगे; **निरन्तर**—निरन्तर।

अनुवाद

"चूँकि जगन्नाथ पुरी और नवद्वीप का निकट सम्बन्ध है—मानों एक ही घर के दो कमरे हों—इसलिए नवद्वीप के लोग सामान्यतः जगन्नाथ पुरी जाते रहते हैं और जगन्नाथ पुरी के लोग नवद्वीप आते रहते हैं। इस आने-जाने से चैतन्य महाप्रभु के समाचार मिलने में सुविधा होगी। इस तरह मुझे उसके समाचार मिलते रहेंगे।

তুমি সব করিতে পার গমনাগমন ।
গঙ্গা-স্নানে কভু হবে তাঁর আগমন ॥১৮৪॥

तुमि सब करिते पार गमनागमन ।
गङ्गा-स्नाने कभु हबे ताँर आगमन ॥ १८४॥

तुमि—तुम; **सब**—सब; **करिते**—कर; **पार**—सकते हो; **गमन-आगमन**—आना जाना; **गङ्गा-स्नाने**—गंगा स्नान के लिए; **कभु**—कभी-कभी; **हबे**—यह सम्भव होगा; **ताँर**—उसका; **आगमन**—यहाँ आना।

अनुवाद

"तुम सारे भक्त आ-जा सकोगे और कभी-कभी वह भी गंगा-स्नान करने के लिए आ सकता है।

আপনার দুঃখ-সুখ তাহাঁ নাহি গণি ।
তাঁর যেই সুখ, তাহা নিজ-সুখ মানি ॥১৮৫॥

आपनार दुःख-सुख ताहाँ नाहि गणि ।
ताँर ग्रेइ सुख, ताहा निज-सुख मानि ॥ १८५ ॥

आपनार—मेरा अपना; **दुःख-सुख**—दुःख-सुख; **ताहाँ**—वहाँ; **नाहि**—नहीं; **गणि**—मैं मानती; **ताँर**—उनका; **ग्रेइ**—जो कुछ; **सुख**—सुख; **ताहा**—वह; **निज**—मेरा अपना; **सुख**—सुख; **मानि**—मैं मानती हूँ।

अनुवाद

"मुझे अपने सुख या दुःख की चिन्ता नहीं है, चिन्ता केवल उसके सुख की है। मैं उसके सुख को ही अपना सुख मानती हूँ।"

শুনি' ভক্ত-গণ তাঁরে করিল স্তবন ।
বেদ-আজ্ঞা যৈছে, মাতা, তোমার বচন ॥১৮৬॥

शुनि' भक्त-गण ताँरे करिल स्तवन ।
वेद-आज्ञा ग्रैछे, माता, तोमार वचन ॥ १८६ ॥

शुनि'—यह सुनकर; **भक्त-गण**—सभी भक्त; **ताँरे**—उनकी; **करिल**—की; **स्तवन**—स्तुति; **वेद-आज्ञा**—वेदों का आदेश; **ग्रैछे**—जैसे; **माता**—मेरी प्रिय माता; **तोमार वचन**—आपका वचन।

अनुवाद

शचीमाता के वचन सुनकर सारे भक्तों ने उनकी स्तुति की और उन्हें विश्वास दिलाया कि उनका आदेश वेदों के आदेश के समान है, जिसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता।

ভক্ত-গণ প্রভু-আগে আসিয়া কহিল ।
শুনিয়া প্রভুর মনে আনন্দ হইল ॥১৮৭॥

भक्त-गण प्रभु-आगे आसिया कहिल ।
शुनिया प्रभुर मने आनन्द हइल ॥ १८७॥

भक्त-गण—भक्तगण; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **आगे**—सामने; **आसिया**—आकर; **कहिल**—सूचना दी; **शुनिया**—सुनकर; **प्रभुर**—महाप्रभु के; **मने**—मन में; **आनन्द**—आनन्द; **हइल**—हुआ।

अनुवाद

सारे भक्तों ने चैतन्य महाप्रभु को शचीमाता के निर्णय की सूचना दी। यह सुनकर महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए।

নবদ্বীপ-বাসী আদি যত ভক্ত-গণ ।
সবারে সম্মান করি' বলিলা বচন ॥১৮৮॥

नवद्वीप-वासी आदि यत भक्त-गण ।
सबारे सम्मान करि' बलिला वचन ॥ १८८ ॥

नवद्वीप-वासी—नवद्वीप के सभी निवासी; **आदि**—विशेषत:; **यत**—सभी; **भक्त-गण**—भक्तगण; **सबारे**—उन सबको; **सम्मान**—सम्मान; **करि'**—करके; **बलिला**—कहे; **वचन**—ये वचन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नवद्वीप तथा अन्य नगरों से आये सभी भक्तों का सम्मान किया और उनसे इस प्रकार कहा :

তুমি-সব লোক—মোর পরম বান্ধব ।
এই ভিক্ষা মাগোঁ,—মোরে দেহ তুমি সব ॥১৮৯॥

तुमि-सब लोक—मोर परम बान्धव ।
एइ भिक्षा मागों,—मोरे देह तुमि सब ॥ १८९ ॥

तुमि-सब लोक—तुम सब लोग; **मोर**—मेरे; **परम बान्धव**—परम प्रिय मित्र; **एइ भिक्षा मागों**—मैं एक भिक्षा माँगता हूँ; **मोरे**—मुझे; **देह**—कृपया दो; **तुमि**—आप; **सब**—सब।

अनुवाद

"मेरे प्रिय मित्रों, आप सभी मेरे घनिष्ठ मित्र हो। अब मैं आप सबसे एक भिक्षा माँगता हूँ। कृपा करके मुझे यह भिक्षा दें।"

ঘরে যাঞা কর সদা কৃষ্ণ-সঙ্কীর্তন ।
কৃষ্ণ-নাম, কৃষ্ণ-কথা, কৃষ্ণ আরাধন ॥১৯০॥

घरे ग्राञा कर सदा कृष्ण-सङ्कीर्तन ।
कृष्ण-नाम, कृष्ण-कथा, कृष्ण आराधन ॥ १९० ॥

घरे ग्राञा—घर लौटकर; **कर**—कृपया करो; **सदा**—सदा; **कृष्ण-सङ्कीर्तन**—कृष्ण के पावन नाम का संकीर्तन; **कृष्ण-नाम**—भगवान् का पावन नाम; **कृष्ण-कथा**—कृष्ण-लीलाओं की चर्चा; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण की; **आराधन**—पूजा, आराधना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबसे प्रार्थना की कि वे घर लौट जाएँ और वहाँ सामूहिक नाम-कीर्तन प्रारम्भ कर दें। उन्होंने यह भी प्रार्थना की कि वे कृष्ण की पूजा करें, उनके पवित्र नाम का कीर्तन करें तथा उनकी पवित्र लीलाओं की चर्चा करें।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यन्त प्रामाणिक रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय अर्थात् हरे कृष्ण आन्दोलन की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। ऐसा नहीं है कि हर कोई श्री चैतन्य महाप्रभु की तरह संन्यास ग्रहण करे। जैसाकि महाप्रभु ने आदेश दिया है, प्रत्येक व्यक्ति घर पर कृष्णभावनामृत का पालन कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति कृष्ण-नाम का अर्थात् हरे कृष्ण महामन्त्र का सामूहिक कीर्तन कर सकता है। वह *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* की विषयवस्तु की चर्चा भी कर सकता है और घर पर राधा-कृष्ण या गौर निताई अथवा दोनों के अर्चाविग्रह स्थापित करके उनकी सावधानीपूर्वक पूजा कर सकता है। इसके लिए हमें विश्व-भर में पृथक्-पृथक् केन्द्रों की स्थापना करने की आवश्यकता नहीं है। जिसे भी कृष्णभावनामृत आन्दोलन में रुचि है, वह वरिष्ठ भक्तों के निर्देशन में अपने घर में ही अर्चाविग्रह स्थापित कर सकता है, उसकी नियमित पूजा कर सकता है, महामन्त्र का कीर्तन कर सकता है और *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* की चर्चा कर सकता है। हम वास्तव में अपनी कक्षाओं में यही शिक्षा देते हैं कि यह सब कैसे किया जाये। यदि किसी को ऐसा लगता है कि वह मन्दिर में अभी रहने को तैयार नहीं अथवा मन्दिर के

विधि-विधानों का दृढ़तापूर्वक पालन नहीं कर सकता—विशेषतया ऐसे गृहस्थ जो पत्नी तथा बच्चों के साथ रहते हैं—वे घर पर ही अर्चाविग्रह स्थापित करके, सुबह-शाम अर्चाविग्रह की पूजा करके, हरे कृष्ण का कीर्तन करके तथा *भगवद्गीता* और *श्रीमद्भागवत* की चर्चा करके एक केन्द्र आरम्भ कर सकते हैं। इसे हर कोई घर पर सरलता से कर सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने वहाँ उपस्थित सारे भक्तों से ऐसा करने के लिए प्रार्थना की।

আজ্ঞা দেহ নীলাচলে করিয়ে গমন ।
মধ্যে মধ্যে আসি' তোমায় দিব দরশন ॥ ১৯১॥

आज्ञा देह नीलाचले करिये गमन ।
मध्ये मध्ये आसि' तोमाय दिब दरशन ॥ १९१ ॥

आज्ञा देह—आज्ञा दो; **नीलाचले**—जगन्नाथ पुरी को; **करिये**—मैं करुँ; **गमन**—गमन; **मध्ये मध्ये**—कभी-कभी बीच में; **आसि'**—यहाँ आकर; **तोमाय**—आप सबको; **दिब**—मैं दूंगा; **दरशन**—दर्शन।

अनुवाद

भक्तों को इस प्रकार उपदेश देने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथ पुरी जाने की अनुमति चाही। उन्होंने आश्वासन दिया कि वे बीच बीच में वहाँ आते रहेंगे और उनसे बार-बार मिलते रहेंगे।

এত বলি' সবাকারে ঈষৎ হাসিঞা ।
বিদায় করিল প্রভু সম্মান করিঞা ॥ ১৯২॥

एत बलि' सबाकारे ईषत् हासिञा ।
विदाय करिल प्रभु सम्मान करिञा ॥ १९२ ॥

एत बलि'—यह कहकर; **सबाकारे**—सभी भक्तों को; **ईषत् हासिञा**—हल्का सा मुस्कुराकर; **विदाय करिल**—विदा दी; **प्रभु**—महाप्रभु; **सम्मान करिञा**—सम्मानपूर्वक ।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने सभी भक्तों का सम्मान करते हुए और सौम्यता से मुस्कुराते हुए सबको विदा किया।

সবা বিদায় দিয়া প্রভু চলিতে কৈল মন ।
হরিদাস কান্দি' কহে করুণ বচন ॥ ১৯৩॥

सबा विदाय दिया प्रभु चलिते कैल मन ।
हरिदास कान्दि' कहे करुण वचन ॥ १९३॥

सबा विदाय दिया—सबको घर लौटने को कहकर; **प्रभु**—महाप्रभु ने; **चलिते**—जाने का; **कैल**—निर्णय लिया; **मन**—मन; **हरिदास कान्दि'**—हरिदास ठाकुर क्रन्दन करने लगे; **कहे**—कहने लगे; **करुण**—करुण; **वचन**—वचन।

अनुवाद

सभी भक्तों से घर लौट जाने की विनती करने के बाद महाप्रभु ने जगन्नाथ पुरी जाने का निश्चय किया। उस समय हरिदास ठाकुर क्रन्दन करते हुए करुण वचन बोले।

নীলাচলে যাবে তুমি, মোর কোন্‌গতি ।
নীলাচলে যাইতে মোর নাহিক শকতি ॥ ১৯৪॥

नीलाचले ग्राबे तुमि, मोर कोन्गति ।
नीलाचले ग्राइते मोर नाहिक शकति ॥ १९४॥

नीलाचले ग्राबे तुमि—आप जगन्नाथ पुरी चले जाएँगे; **मोर**—मेरी; **कोन्**—क्या; **गति**—गति; **नीलाचले**—जगन्नाथ पुरी; **ग्राइते**—जाने की; **मोर**—मेरी; **नाहिक**—नहीं है; **शकति**—शक्ति।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, "यह तो ठीक है कि आप नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) जा रहे हैं, किन्तु मेरी क्या गति होगी? मैं तो नीलाचल जाने में असमर्थ हूँ।"

तात्पर्य

यद्यपि श्रील हरिदास ठाकुर का जन्म मुसलमान परिवार में हुआ था, किन्तु वे शुद्ध दीक्षित ब्राह्मण के रूप में स्वीकार किये जाते थे। इसलिए वे जगन्नाथ पुरी के मन्दिर में प्रवेश करने के पूर्ण अधिकारी थे, किन्तु कुछ ऐसे नियम थे जिनके अनुसार वर्णाश्रम धर्म—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—के लोग ही मन्दिर में प्रवेश कर सकते थे। हरिदास ठाकुर विनम्रतावश इन नियमों का

उल्लंघन नहीं करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने कहा कि उनमें मन्दिर में प्रवेश करने की शक्ति नहीं है। उन्होंने प्रार्थना की कि यदि महाप्रभु मन्दिर के भीतर रहेंगे, तो हरिदास के लिए महाप्रभु के दर्शन का कोई उपाय नहीं रहेगा। बाद में, जब हरिदास ठाकुर जगन्नाथ पुरी गये, तो वे मन्दिर से बाहर समुद्र-तट पर सिद्धबकुल नामक स्थान पर रहे। वहाँ अब एक मठ बना दिया गया है, जो सिद्धबकुल मठ के नाम से विख्यात है। जो लोग जगन्नाथ पुरी जाते हैं, वे सिद्धबकुल तथा समुद्रतट पर हरिदास ठाकुर की समाधि के दर्शन के लिए जाते हैं।

মুঞি অধম তোমার না পাব দরশন ।
কেমতে ধরিব এই পাপিষ্ঠ জীবন ॥ ১৯৫॥

मुञि अधम तोमार ना पाब दरशन ।
केमते धरिब एइ पापिष्ठ जीवन ॥ १९५॥

मुञि—मैं; **अधम**—अधम; **तोमार**—आपका; **ना**—नहीं; **पाब**—पाऊँगा; **दरशन**—दर्शन; **केमते**—कैसे; **धरिब**—रखूंगा; **एइ**—यह; **पापिष्ठ**—पापी; **जीवन**—जीवन।

अनुवाद

"अत्यन्त नीच व्यक्ति होने के कारण मैं आपके दर्शन नहीं पा सकूँगा। मैं अपने पापमय जीवन को किस तरह धारण किये रहूँगा?"

প্রভু কহে,—কর তুমি দৈন্য সম্বরণ ।
তোমার দৈন্যেতে মোর ব্যাকুল হয় মন ॥ ১৯৬॥

प्रभु कहे,—कर तुमि दैन्य सम्वरण ।
तोमार दैन्येते मोर व्याकुल हय मन ॥ १९६॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **कर**—करो; **तुमि**—आप; **दैन्य**—दीनता पर; **सम्वरण**—नियंत्रण; **तोमार**—आपकी; **दैन्येते**—दीनता से, विनय से; **मोर**—मेरा; **व्याकुल**—व्याकुल; **हय**—होता है; **मन**—मन।

अनुवाद

महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर से कहा, "कृपया आप अपनी दीनता को

नियंत्रित कीजिये। आपकी दीनता देखकर मेरा मन अत्यधिक व्याकुल हो रहा है।"

তোমা লাগি' জগন্নাথে করিব নিবেদন ।
তোমা-লঞা যাব আমি শ্রী-পুরুষোত্তম ॥১৯৭॥

तोमा लागि' जगन्नाथे करिब निवेदन ।
तोमा-लञा य़ाब आमि श्री-पुरुषोत्तम ॥ १९७॥

तोमा लागि'—आपके लिए; **जगन्नाथे**—भगवान् जगन्नाथ को; **करिब**—मैं करूँगा; **निवेदन**—निवेदन; **तोमा-लञा**—आपको लेकर; **य़ाब**—जाऊँगा; **आमि**—मैं; **श्री-पुरुषोत्तम**—जगन्नाथ पुरी को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर को आश्वस्त किया कि वे भगवान् जगन्नाथ के समक्ष निवेदन करेंगे और निश्चय ही उन्हें जगन्नाथ पुरी ले चलेंगे।"

তবে ত' আচার্য কহে বিনয় করিঞা ।
দিন দুই-চারি রহ কৃপা ত' করিঞা ॥১৯৮॥

तबे त' आचार्य़ कहे विनय करिञा ।
दिन दुइ-चारि रह कृपा त' करिञा ॥ १९८॥

तबे—तत्पश्चात्; **त'**—निश्चित रूप से; **आचार्य़ कहे**—अद्वैत आचार्य ने कहा; **विनय करिञा**—विनयपूर्वक; **दिन दुइ-चारि**—दो चार दिन और; **रह**—कृपया रहो; **कृपा**—कृपा; **त'**—निश्चित रूप से; **करिञा**—करके।

अनुवाद

इसके बाद अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से अनुनय-विनय की कि वे दो-चार दिन और रहने की कृपा करें।

আচার্যের বাক্য প্রভু না করে লঙ্ঘন ।
রহিলা অদ্বৈত-গৃহে, না কৈল গমন ॥১৯৯॥

आचार्य्येर वाक्य प्रभु ना करे लङ्घन ।
रहिला अद्वैत-गृहे, ना कैल गमन ॥ १९९ ॥

आचार्य्येर वाक्य—अद्वैत आचार्य का कथन; **प्रभु**—महाप्रभु; **ना करे लङ्घन**—उल्लंघन नहीं करते; **रहिला**—रह गये; **अद्वैत-गृहे**—अद्वैत आचार्य के घर पर; **ना कैल गमन**—और शीघ्र नहीं गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कभी भी अद्वैत आचार्य की प्रार्थना का उल्लंघन नहीं करते थे; अतएव वे उनके घर पर रुके रहे और उन्होंने जगन्नाथ पुरी के लिए तुरन्त प्रस्थान नहीं किया।

আনন্দিত হৈল আচার্য, শচী, ভক্ত, সব ।
প্রতি-দিন করে আচার্য মহা-মহোৎসব ॥২০০॥

आनन्दित हैल आचार्य्य, शची, भक्त, सब ।
प्रति-दिन करे आचार्य्य महा-महोत्सव ॥ २०० ॥

आनन्दित हैल—प्रसन्न हो गये; **आचार्य्य**—अद्वैत आचार्य; **शची**—माता शचीदेवी; **भक्त**—भक्त; **सब**—सब; **प्रति-दिन**—प्रतिदिन; **करे**—करते; **आचार्य्य**—अद्वैत आचार्य; **महा-महा-उत्सव**—महान् उत्सव।

अनुवाद

महाप्रभु के निर्णय से अद्वैत आचार्य, शचीमाता तथा सारे भक्त अत्यन्त प्रसन्न हुए। अद्वैत आचार्य प्रतिदिन महान् उत्सवों का आयोजन करते रहे।

দিনে কৃষ্ণ-কথা-রস ভক্ত-গণ-সঙ্গে ।
রাত্রে মহা-মহোৎসব সঙ্কীর্তন-রঙ্গে ॥২০১॥

दिने कृष्ण-कथा-रस भक्त-गण-सङ्गे ।
रात्रे महा-महोत्सव सङ्कीर्तन-रङ्गे ॥ २०१ ॥

दिने—दिन के समय; **कृष्ण-कथा-रस**—कृष्ण सम्बन्धी चर्चा; **भक्त-गण-सङ्गे**—भक्तों के साथ; **रात्रे**—रात को; **महा-महा-उत्सव**—महान् उत्सव; **सङ्कीर्तन-रङ्गे**—संकीर्तन के रूप में।

अनुवाद

दिन के समय सारे भक्त कृष्ण-कथाओं की चर्चा करते और रात में अद्वैत आचार्य के घर सामूहिक कीर्तन महोत्सव मनाया जाता।

আনন্দিত হঞা শচী করেন রন্ধন ।
সুখে ভোজন করে প্রভু লঞা ভক্ত-গণ ॥২০২॥

आनन्दित हञा शची करेन रन्धन ।
सुखे भोजन करे प्रभु लञा भक्त-गण ॥ २०२ ॥

आनन्दित हञा—प्रसन्न होकर; **शची**—माता शची; **करेन**—करतीं; **रन्धन**—पकाना; **सुखे**—प्रसन्नतापूर्वक; **भोजन**—भोजन; **करे**—करते; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **लञा**—संगति में; **भक्त-गण**—सभी भक्तों की।

अनुवाद

माता शची बड़े आनन्द से भोजन पकातीं और भक्तों सहित श्री चैतन्य महाप्रभु बड़े ही आनन्द के साथ प्रसाद ग्रहण करते।

আচার্যের শ্রদ্ধা-ভক্তি-গৃহ-সম্পদ-ধনে ।
সকল সফল হৈল প্রভুর আরাধনে ॥২০৩॥

आचार्येर श्रद्धा-भक्ति-गृह-सम्पद-धने ।
सकल सफल हैल प्रभुर आराधने ॥ २०३ ॥

आचार्येर—श्री अद्वैत आचार्य की; **श्रद्धा**—श्रद्धा; **भक्ति**—भक्ति; **गृह**—घर; **सम्पद**—ऐश्वर्य; **धने**—धन, सम्पत्ति; **सकल**—सब; **सफल**—सफल; **हैल**—हो गया; **प्रभुर**—चैतन्य महाप्रभु की; **आराधने**—पूजा में।

अनुवाद

इस तरह अद्वैत आचार्य के सारे ऐश्वर्य—उनकी श्रद्धा, भक्ति, घर, धन और अन्य सब कुछ—श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में भलीभाँति उपयोग किये गये।

तात्पर्य

अद्वैत आचार्य ने चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों का स्वागत करने और

अपने घर में नित्य उत्सव मनाने में समस्त गृहस्थ-भक्तों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया है। यदि किसी के पास समुचित साधन और धन हो, तो उसे चाहिए कि विश्व-भर में प्रचार करने वाले चैतन्य महाप्रभु के भक्तों को समय-समय पर आमन्त्रित करे और अपने घर पर उत्सव का आयोजन करे, जिसमें वह प्रसाद वितरण करे, दिन के समय कृष्ण-कथा हो तथा शाम के समय कम-से-कम तीन घंटे तक सामूहिक कीर्तन चले। यह विधि सभी कृष्णभावनामृत आन्दोलन केन्द्रों में अपनाई जाये। इस तरह से नित्य ही *सङ्कीर्तन यज्ञ* सम्पन्न होता रहेगा। *श्रीमद्भागवत* (११.५.३२) में इस युग के लिए हररोज संकीर्तन यज्ञ करने का आदेश दिया गया है (*यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*)। चैतन्य महाप्रभु तथा उनके चारों पार्षदों—पंचतत्त्व की प्रसाद वितरण और संकीर्तन द्वारा पूजा करनी चाहिए। वास्तव में, इस कलियुग के लिए इसी यज्ञ की सब से अधिक संस्तुति की गई है। इस युग में अन्य यज्ञों को सम्पन्न कर पाना सम्भव नहीं है, किन्तु इस यज्ञ को कहीं भी बिना किसी कठिनाई के सम्पन्न किया जा सकता है।

শচীর আনন্দ বাড়ে দেখি' পুত্র-মুখ ।
ভোজন করাঞা পূর্ণ কৈল নিজ-সুখ ॥২০৪॥

शचीर आनन्द बाड़े देखि' पुत्र-मुख ।
भोजन कराञा पूर्ण कैल निज-सुख ॥ २०४॥

शचीर—शची माता का; **आनन्द बाड़े**—आनन्द बढ़ता; **देखि'**—देखकर; **पुत्र-मुख**—अपने पुत्र का मुख; **भोजन कराञा**—भोजन कराना; **पूर्ण**—पूर्ण; **कैल**—किया; **निज-सुख**—अपना सुख।

अनुवाद

शचीमाता का आनन्द निरन्तर अपने पुत्र का मुख देखकर तथा भोजन कराकर बढ़ता रहा तथा अतन्तः पूर्णता को प्राप्त हुआ।

এই-মত অদ্বৈত-গৃহে ভক্ত-গণ মিলে ।
বঞ্চিলা কতক-দিন মহা-কুতূহলে ॥২০৫॥

एइ-मत अद्वैत-गृहे भक्त-गण मिले ।
वञ्चिला कतक-दिन महा-कुतूहले ॥ २०५ ॥

एइ-मते—इस प्रकार; **अद्वैत-गृहे**—अद्वैत आचार्य के घर पर; **भक्त-गण**—सभी भक्त; **मिले**—एकत्रित हुए; **वञ्चिला**—व्यतीत किये; **कतक-दिन**—कुछ दिन; **महा-कुतूहले**—महान् उत्सव वातावरण में।

अनुवाद

इस तरह सारे भक्त अद्वैत आचार्य के घर पर मिले और उन्होंने महोत्सवमय वातावरण में एक साथ कुछ दिन बिताये।

আর দিন প্রভু কহে সব ভক্ত-গণে ।
নিজ-নিজ-গৃহে সবে করহ গমনে ॥২০৬॥

आर दिन प्रभु कहे सब भक्त-गणे ।
निज-निज-गृहे सबे करह गमने ॥ २०६ ॥

आर दिन—अगले दिन; **प्रभु**—महाप्रभु ने; **कहे**—कहा; **सब**—सब; **भक्त-गणे**—भक्तों को; **निज-निज-गृहे**—अपने अपने घर को; **सबे**—सब; **करह**—करो; **गमने**—गमन।

अनुवाद

अगले दिन चैतन्य महाप्रभु ने सभी भक्तों से अपने-अपने घर लौट जाने की विनती की।

ঘরে গিয়া কর সবে কৃষ্ণ-সঙ্কীর্তন ।
পুনরপি আমা-সঙ্গে হইবে মিলন ॥২০৭॥

घरे गिया कर सबे कृष्ण-सङ्कीर्तन ।
पुनरपि आमा-सङ्गे हइबे मिलन ॥ २०७ ॥

घरे गिया—घर लौटकर; **कर**—करो; **सबे**—सभी; **कृष्ण-सङ्कीर्तन**—महामन्त्र का संकीर्तन; **पुनरपि**—बार बार; **आमा-सङ्गे**—मेरे साथ; **हइबे**—होगा; **मिलन**—मिलन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबसे अपने-अपने घरों में भगवन्नाम का सामूहिक संकीर्तन करने के लिए भी कहा और उन्होंने विश्वास दिलाया कि वे उनसे दोबारा अवश्य मिल सकेंगे।

কভু বা তোমরা করিবে নীলাদ্রি গমন ।
কভু বা আসিব আমি করিতে গঙ্গা-স্নান ॥২০৮॥

कभु वा तोमरा करिबे नीलाद्रि गमन ।
कभु वा आसिब आमि करिते गङ्गा-स्नान ॥ २०८ ॥

कभु—कभी-कभी; **वा**—या; **तोमरा**—तुम; **करिबे**—करोगे; **नीलाद्रि**—जगन्नाथ पुरी; **गमन**—गमन; **कभु**—कभी-कभी; **वा**—अथवा; **आसिब**—आऊँगा; **आमि**—मैं; **करिते**—करने के लिए; **गङ्गा-स्नान**—गंगा स्नान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे कहा, "कभी तुम लोग जगन्नाथ पुरी आओगे और कभी मैं गंगा-स्नान करने आऊँगा।"

নিত্যানন্দ-গোসাঞি, পণ্ডিত জগদানন্দ ।
দামোদর পণ্ডিত, আর দত্ত মুকুন্দ ॥২০৯॥
এই চারি-জন আচার্য দিল প্রভু সনে ।
জননী প্রবোধ করি' বন্দিল চরণে ॥২১০॥

नित्यानन्द-गोसाञि, पण्डित जगदानन्द ।
दामोदर पण्डित, आर दत्त मुकुन्द ॥ २०९ ॥
एइ चारि-जन आचार्य्य दिल प्रभु सने ।
जननी प्रबोध करि' वन्दिल चरणे ॥ २१० ॥

नित्यानन्द-गोसाञि—नित्यानन्द प्रभु; **पण्डित जगदानन्द**—जगदानन्द पण्डित; **दामोदर पण्डित**—दामोदर पण्डित; **आर दत्त मुकुन्द**—और मुकुन्द दत्त; **एइ चारि-जन**—ये चार व्यक्ति; **आचार्य्य**—आचार्य अद्वैत; **दिल**—दिया; **प्रभु सने**—श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; **जननी**—माता शची; **प्रबोध करि'**—सान्त्वना देकर; **वन्दिल चरणे**—उनके चरणकमलों की वन्दना की।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु के साथ जाने के लिए चार जनों को भेजा। इनके नाम थे—नित्यानन्द गोसांइ, जगदानन्द पण्डित, दामोदर पंडित तथा मुकुन्द दत्त। अपनी माता को सान्त्वना देने के बाद महाप्रभु ने उनके चरणकमलों में प्रार्थना की।

তাঁরে প্রদক্ষিণ করি' করিল গমন ।
এথা আচার্যের ঘরে উঠিল ক্রন্দন ॥২১১॥

ताँरे प्रदक्षिण करि' करिल गमन ।
एथा आचार्य्येर घरे उठिल क्रन्दन ॥ २११ ॥

ताँरे—माता शची; **प्रदक्षिण करि'**—प्रदक्षिणा करके; **करिल**—किया; **गमन**—गमन; **एथा**—वहाँ; **आचार्य्येर**—श्री अद्वैत आचार्य के; **घरे**—घर में; **उठिल**—उठा; **क्रन्दन**—रोना।

अनुवाद

सभी प्रबंध होने के बाद चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता की प्रदक्षिणा की और तत्पश्चात् वे जगन्नाथ पुरी के लिए चल पड़े। इधर अद्वैत आचार्य के घर में उच्च स्वर से रोदन प्रारम्भ हो गया।

নিরপেক্ষ হঞা প্রভু শীঘ্র চলিলা ।
কান্দিতে কান্দিতে আচার্য পশ্চাৎচলিলা ॥২১২॥

निरपेक्ष हञा प्रभु शीघ्र चलिला ।
कान्दिते कान्दिते आचार्य्य पश्चात्चलिला ॥ २१२ ॥

निरपेक्ष—निरपेक्ष; **हञा**—होकर; **प्रभु**—महाप्रभु; **शीघ्र**—शीघ्र; **चलिला**—गये; **कान्दिते कान्दिते**—रोते हुए; **आचार्य्य**—अद्वैत आचार्य; **पश्चात्**—पीछे; **चलिला**—गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अप्रभावित थे। वे तेजी से चल दिये और अद्वैत आचार्य रोते हुए उनके पीछे चल रहे थे।

तात्पर्य

जैसाकि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने व्याख्या की है, *निरपेक्ष* शब्द का अर्थ है किसी भौतिक वस्तु से प्रभावित न होना तथा भगवान् की सेवा में दृढ़ रहना। जगन्नाथ पुरी के लिए प्रस्थान करते समय अद्वैत आचार्य के घर में हो रहे उच्च क्रन्दन की श्री चैतन्य महाप्रभु ने चिन्ता नहीं की। संसारी नैतिकतावादी भले ही श्री चैतन्य महाप्रभु की यह कहकर आलोचना करें कि वे निष्ठुर थे, किन्तु महाप्रभु को ऐसी आलोचना की कोई परवाह नहीं थी। इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन के जगद्गुरु के रूप में उन्होंने यह दिखलाया कि

कृष्णभावना में लगे हुए गम्भीर व्यक्ति को सांसारिक स्नेह से प्रभावित नहीं होना चाहिए। भगवान् की सेवा में लगना और भौतिक लक्ष्यों के प्रति उदासीन रहना ही श्रेष्ठ मार्ग है। बाह्य रूप से हर व्यक्ति भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्त होता है, किन्तु यदि वह ऐसी वस्तुओं में लिप्त हो जाता है, तो वह कृष्णभावनामृत में प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए यदि भौतिक नैतिकता भगवान् की सेवा में विरोध उत्पन्न करती है, तो कृष्णभावनामृत में जुड़े लोग ऐसी तथाकथित नैतिकता की चिन्ता नहीं करते। चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं अपने उदाहरण से दिखलाया है कि उदासीन हुए बिना कृष्णभावना को ठीक से सम्पन्न नहीं की जा सकती।

কত দূর গিয়া প্রভু করি' যোড় হাত ।
আচার্যে প্রবোধি' কহে কিছু মিষ্ট বাত ॥২১৩॥

कत दूर गिया प्रभु करि' य़ोड़ हात ।
आचार्ये प्रबोधि' कहे किछु मिष्ट बात ॥ २१३ ॥

कत दूर गिया—कुछ दूर जाकर; **प्रभु**—महाप्रभु ने; **करि'**—की; **य़ोड़ हात**—हाथ जोड़कर; **आचार्ये**—अद्वैत आचार्य; **प्रबोधि'**—शान्त करके; **कहे**—कहे; **किछु**—कुछ; **मिष्ट बात**—मधुर शब्द।

अनुवाद

जब अद्वैत आचार्य चैतन्य महाप्रभु के पीछे-पीछे कुछ दूर तक गये, तो महाप्रभु ने हाथ जोड़कर उनसे याचना की। वे निम्नलिखित मधुर शब्द बोले।

জননী প্রবোধি' কর ভক্ত সমাধান ।
তুমি ব্যগ্র হৈলে কারো না রহিবে প্রাণ ॥২১৪॥

जननी प्रबोधि' कर भक्त समाधान ।
तुमि व्यग्र हैले कारो ना रहिबे प्राण ॥ २१४ ॥

जननी प्रबोधि'—माता को शान्त करते हुए; **कर**—करो; **भक्त**—भक्तों का; **समाधान**—

समाधान; **तुमि**—आप; **व्यग्र हैले**—यदि व्याकुल हो गये; **कारो**—किसी का; **ना रहिबे**—नहीं रहेगा; **प्राण**—जीवन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "कृपया सारे भक्तों को तथा मेरी माता को सान्त्वना दीजिये। यदि आप ही व्यग्र हो जायेंगे, तो फिर कोई जीवित नहीं रह सकेगा।"

এত বলি' প্রভু তাঁরে করি' আলিঙ্গন ।
নিবৃত্তি করিয়া কৈল স্বচ্ছন্দ গমন ॥২১৫॥

एत बलि' प्रभु ताँरे करि' आलिङ्गन ।
निवृत्ति करिया कैल स्वच्छन्द गमन ॥ २१५ ॥

एत बलि'—यह कहकर; **प्रभु**—महाप्रभु ने; **ताँरे**—उनका; **करि'**—करके; **आलिङ्गन**—आलिंगन; **निवृत्ति**—रोका; **करिया**—करके; **कैल**—किया; **स्वच्छन्द**—निश्चित होकर; **गमन**—गमन, जगन्नाथ पुरी की ओर।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य का आलिंगन किया और उन्हें और आगे चलने से मना किया। फिर निश्चिंत होकर वे जगन्नाथ पुरी के लिए चल पड़े।

গঙ্গা-তীরে-তীরে প্রভু চারি-জন-সাথে ।
নীলাদ্রি চলিলা প্রভু ছত্রভোগ-পথে ॥২১৬॥

गङ्गा-तीरे-तीरे प्रभु चारि-जन-साथे ।
नीलाद्रि चलिला प्रभु छत्रभोग-पथे ॥ २१६ ॥

गङ्गा-तीरे-तीरे—गंगा के किनारे किनारे; **प्रभु**—महाप्रभु; **चारि-जन-साथे**—अन्य चार व्यक्तियों सहित; **नीलाद्रि**—जगन्नाथ पुरी को; **चलिला**—प्रस्थान किया; **प्रभु**—महाप्रभु; **छत्रभोग-पथे**—छत्रभोग के मार्ग से।

अनुवाद

महाप्रभु चारों व्यक्तियों के साथ गंगा नदी के किनारे-किनारे छत्रभोग के मार्ग से नीलाद्रि अर्थात् जगन्नाथ पुरी की ओर चलने लगे।

तात्पर्य

चौबीस परगना जनपद में पूर्वी रेलवे के दक्षिणी खण्ड में मग्राहाट नामक रेलवे स्टेशन है। यदि इस स्टेशन से लगभग १४ मील दक्षिण पूर्व की ओर चलें, तो जयनगर नामक स्थान मिलता है। इस स्थान से लगभग ६ मील दक्षिण में छत्रभोग नामक गाँव है। कभी-कभी इसे खाड़ि भी कहते हैं। इस गाँव में वैजुर्कानाथ नामक शिवजी का अर्चाविग्रह है। प्रतिवर्ष यहाँ पर चैत्र मास (अर्थात् मार्च-अप्रैल मास) में एक उत्सव मनाया जाता है। यह उत्सव नन्दा-मेला के नाम से प्रसिद्ध है। अब वहाँ गंगा नदी नहीं बहतीं। इसी रेलवे लाइन पर एक अन्य स्टेशन है, जिसका नाम है बारुइपुर। इस स्टेशन के पास ही आटिसारा नामक एक दूसरा स्थान है। पहले यह गाँव भी गंगा-तट पर स्थित था। इस गाँव से पाणिहाटी जाया जा सकता है, जहाँ से कलकत्ता के उत्तर में स्थित वराह नगर जाया जा सकता है। उन दिनों गंगा नदी, जो आज भी *आदि गंगा* कहलाती हैं, कलकत्ता के दक्षिण की ओर कालीघाट से होकर बहती थीं। बारुइपुर से गंगा नदी की शाखाएँ मथुरापुर थाने के निकट डायमंड हार्बर से होकर बहती थीं। यह ध्यान देने की बात है कि श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी आते हुए इन सारे स्थानों से होकर गुजरे थे।

'চৈতন্য-মঙ্গলে' প্রভুর নীলাদ্রি-গমন ।
বিস্তারি বর্ণিয়াছেন দাস-বৃন্দাবন ॥২১৭॥

'चैतन्य-मङ्गले' प्रभुर नीलाद्रि-गमन ।
विस्तारि वर्णियाछेन दास-वृन्दावन ॥ २१७॥

चैतन्य-मङ्गले—चैतन्य मंगल नामक ग्रन्थ में; **प्रभुर**—महाप्रभु का; **नीलाद्रि-गमन**—जगन्नाथ पुरी को जाना; **विस्तारि**—विस्तार से; **वर्णियाछेन**—वर्णन किया है; **दास-वृन्दावन**—वृन्दावन दास ठाकुर ने।

अनुवाद

वृन्दावन दास ठाकुर ने अपनी पुस्तक *चैतन्य-मंगल* (चैतन्य भागवत) में जगन्नाथ पुरी तक महाप्रभु के गमन का विस्तार से वर्णन किया है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि बंगाल से होकर जाते हुए चैतन्य महाप्रभु आटिसारा ग्राम, वराह-ग्राम तथा छत्रभोग से होकर गये। फिर वे उड़ीसा प्रान्त में पहुँचे, जहाँ वे प्रयाग-घाट, सुवर्णरेखा नदी, रेमुणा, याजपुर, जहाँ उन्होंने दशाश्वमेध घाट पर वैतरणी नदी में स्नान किया, कटक, जहाँ 'महानदी' नामक नदी बहती है, फिर भुवनेश्वर (जहाँ बिन्दु सरोवर नामक एक महान् सरोवर है), कमलपुर तथा आठारनाला से होकर गये। इस तरह इन सारे तथा अन्य स्थानों से होते हुए महाप्रभु जगन्नाथ पुरी पहुँचे।

অদ্বৈত-গৃহে প্রভুর বিলাস শুনে যেই জন ।
অচিরে মিলয়ে তাঁরে কৃষ্ণ-প্রেম-ধন ॥২১৮॥

अद्वैत-गृहे प्रभुर विलास शुने ग्रेइ जन ।
अचिरे मिलये ताँरे कृष्ण-प्रेम-धन ॥ २१८ ॥

अद्वैत-गृहे—अद्वैत आचार्य के घर पर; **प्रभुर**—महाप्रभु की; **विलास**—लीलाएँ; **शुने**—सुनता है; **ग्रेइ**—जो; **जन**—व्यक्ति; **अचिरे**—अति शीघ्र; **मिलये**—मिलता है; **ताँरे**—उसको; **कृष्ण-प्रेम-धन**—कृष्ण-प्रेम रूपी धन।

अनुवाद

जो व्यक्ति अद्वैत आचार्य के घर में सम्पन्न महाप्रभु के कार्यकलापों को सुनता है, उसे निश्चय ही तुरन्त कृष्ण-प्रेम रूपी धन प्राप्त होता है।

শ্রী-রূপ-রঘুনাথ-পদে যার আশ ।
চৈতন্য-চরিতামৃত কহে কৃষ্ণদাস ॥২১৯॥

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे ग्रार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ २१९ ॥

श्री-रूप—श्रील रूप गोस्वामी; **रघुनाथ**—श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; **पदे**—चरणकमलों पर; **ग्रार**—जिनकी; **आश**—आशा; **चैतन्य-चरितामृत**—चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; **कहे**—वर्णन करता है; **कृष्णदास**—श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए और सदा उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं, कृष्णदास, उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत की मध्यलीला के तृतीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें चैतन्य महाप्रभु के अद्वैत आचार्य के घर में ठहरने, उनके संन्यास ग्रहण करने, अद्वैत आचार्य के घर पर नित्य उत्सव मनाने, भगवान् के पवित्र नाम का सामूहिक कीर्तन करने और सभी भक्तों के साथ प्रसाद ग्रहण करने का वर्णन है ।